प्रकाशक—
जीतमल लूणिया, मंत्री
सस्ता-साहित्य-प्रकाशक मंडल, अजमेर

हिंदी प्रेमियों से अनुरोध

इस सस्ता-मंडल की पुस्तकों का विषय, उनकी पृष्ठ-संख्या और मूल्य पर ज़रा विचार कीजिये। कितनी उत्तम और साथ ही कितनी सस्ती हैं। मण्डल से निकली हुई पुस्तकों के नाम तथा स्थाई ग्राहक होने के नियम पुस्तक के अंत में दिये हुए हैं, उन्हें एकबार आप अवश्य पढ़ लीजिये।

* ग्राहक नम्बर

* यदि आप इस मंडल के ग्राहक हैं तो अपना नम्बर यहाँ लिख रखिये ताकि आपको याद रहे। पत्र देते समय यह नंवर ज़रूर लिखा करें।

मुद्रक
गणपति कृष्ण गुर्जर,
श्रीलक्ष्मीनारायण प्रेस, काशी।

FOREWORD.

If one wishes to understand aright the genius of the Tamil people and their culture one must read Tri-k-kural. A study of this book is necessary to complete a scholar's knowledge of Indian literature as a whole. Shriyut Kshemanand Rahat has done a very great service to the people of Northern India by rendering Tri-k-kural into Hindi. Trivalluvar was an untouchable but there is not the slightest trace of consciousness of this fact in any part of the book nor do any of the numercus references by other Tamil Poets to Trivalluvar and his great book disclose any advertance to this. This total indifference to this 'low' caste of the author of Tri-k-kural together with the high reverential attitude of all contemporary and successive generations of poets and philosophers, is one of the most remarkable phenomena of Indian culture.

Tri-k-kural is a mine of wisdom, refinement and practical insight into human nature. A high spritual level of thought combined with keen insight into human character and its infirmities is the most striking characteristic of this wonderful book. For conscious and disciplined catholicism spirit of Tri-k-kural is a monu-

mental example. As a work of art also it takes high rank in world's literature by reason of brevity, aptness of illustrations and incessiveness of style.

The North will see in this book the intimate connection and unity of the civilization and culture of the North with that of the Tamil People. At the same time Tri-k-kural brings out the beauty and the individuality of the South. I hope that a study of Sjt. Kshemanand Rahat's Hindi version will lead atleast a few ardent spirits of the North to realize the importance of the constructive development of the cultural unity of India and for that purpose to take up the study of Tamil language and literature enabling them to read Tri-k-kural and other great Tamil books in original and enjoy their untranslatable excellences.

TIRCHENGODRU
MADRAS
27-1-27

C. Rajgopalachari.

प्रस्तावना

तामिल जाति की अन्तरात्मा और उसके संस्कार को ठीक तरह से समझने के लिये 'त्रिक्कुरल' का पढ़ना आवश्यक है। इतना ही नहीं, यदि कोई चाहे कि भारत के समस्त साहित्य का मुझे पूर्ण रूप से ज्ञान हो जाय तो त्रिक्कुरल को बिना पढ़े हुए उसका अभीष्ट सिद्ध नहीं हो सकता। त्रिक्कुरल का हिन्दी में भाषान्तर करके श्री क्षेमानन्दजी राहत ने उत्तर भारत के लोगों की बहुत बड़ी सेवा की है। त्रिक्कुरल जाति के अछूत थे। किन्तु पुस्तक भर में कहीं भी इस बात का ज़रा सा भी आभास नहीं मिलता कि ग्रन्थकार के मन में इस बात का कोई ख़याल था और तामिल कवियों ने भी अनेक स्थानों में जहाँ जहाँ तिरुवल्लुवर की कविताएँ उद्धृत की हैं, या उनकी चर्चा की है; वहाँ भी इस बात का आभास नहीं मिलता कि वे अछूत थे। यह भारतीय संस्कृति का अनूठापन है कि त्रिक्कुरल के रचयिता की जाति की हीनता की ओर बिल्कुल ध्यान नहीं दिया गया बल्कि उनके सम सामयिक और बाद के कवियों और दार्शनिकों ने भी उनके प्रति बड़ी श्रद्धा और भक्ति प्रकट की है।

त्रिक्कुरल विवेक, शुभ संस्कार और मानव प्रकृति के व्यावहारिक ज्ञान की खान है। इस अद्भुत ग्रन्थ की सब से बड़ी विशेषता और चमत्कार यह है कि इसमें मानव चरित्र और उसकी दुर्बलताओं की तह तक विचार करके उच्च आध्यात्मिकता का प्रति-

पादन किया गया है। विचार के सचेत और संयत औदार्य्य के लिये त्रिक्कुरल का भाव एक ऐसा उदाहरण है कि जो बहुत काल तक अनुपम बना रहेगा। कला की दृष्टि से भी संसार के साहित्य में इसका स्थान ऊँचा है। क्योंकि, यह ध्वनि-काव्य है। उपमायें और दृष्टान्त बहुत ही समुचित रखे गये हैं और इनकी शैली व्यङ्ग पूर्ण है।

उत्तर भारतवासी देखेंगे कि इस पुस्तक में उत्तरी सभ्यता और संस्कृति का तामिल जाति से कितना घनिष्ट सम्बन्ध और तादात्म्य है। साथ ही त्रिक्कुरल दक्षिण की निजी विशेषता और सौन्दर्य को प्रकट करता है। मैं आशा करता हूँ—राहुलजी के इस हिन्दी भाषान्तर के अध्ययन से कम से कम कुछ उत्साही उत्तर भारतीयों के हृदयों में, भारत की संस्कृति सम्बन्धी एकता के रचनात्मक विकास का महत्व जम जायगा, और इसी दृष्टि से वे तामिल भाषा तथा उसके साहित्य का अध्ययन करने लग जायँगे जिससे वे त्रिक्कुरल और अन्य महान तामिल ग्रन्थों को मूल भाषा में पढ़ सकें और उनके काव्य सौष्टवों का रसास्वादन कर सकें कि जो अनुवाद में कभी आ ही नहीं सकता।

गान्धी आश्रम
तिरुचेनगोड्ड, मद्रास

सी० राजगोपालाचार्य

समर्पण

श्रीमान् मेवाड़ाधिपति, प्रताप के योग्य वंशधर, हिन्दू-सूर्य महाराणा फतहसिंहजी की सेवा में:—

राजर्षे !

इस वीर-भूमि राजस्थान के अन्तस्तल मेवाड़ में मेरी अटूट भक्ति है, अनन्य श्रद्धा है; बचपन से ही मैं उसकी गुण-गाथा पर मुग्ध हूँ। अधिक क्या कहूँ, मेवाड़ मेरे हृदय का हरिद्वार, मेरे आत्मा की त्रिवेणी है।

मेरे लिये तो इतना ही बस था कि आप मेवाड़ के अधिवासी हैं, अधिपति हैं—उसी मेवाड़ के कि जिसने महाराणा प्रताप को जन्म दिया। पर, जब मुझे आपके जीवन का परिचय मिला तो मेरा हृदय श्रद्धा से उमड़ उठा।

मैं नहीं जानता कि आप कैसे नरेश हैं, पर, मैं मानता हूँ कि आप एक दिव्य पुरुष हैं। जो एक बार आपके चरित्र को सुनेगा, श्रद्धा और भक्ति से उसका मस्तक नत हुए विना न रहेगा। ऐश्वर्य और चारित्र्य का ऐसा सुन्दर सम्मिश्रण तो सचमुच स्वर्ग के भी गौरव की चीज़ है।

स्वाभिमान और आत्म-गौरव से छक कर, निर्भय हो विचरण करने वाला, मध्यकालीन भारत का जीवन-प्राण, वह अलबेला चत्रियत्व आज यदि कहीं है तो केवल आप में। आप उस लुप्त-प्राय चात्र-तेज की जाज्वल्यमान अन्तिम राशि हैं।

ऐ भारत के गौरव-मन्दिर के अधिष्ठाता! आपने इस विपन्नकाल में भी हमारे तीर्थ की पवित्रता को नष्ट नहीं होने दिया, इसके लिये आप धन्य हैं! आप उन पुण्य चरित्र पूर्वजों के योग्य स्मारक हैं और आधुनिक भारत की एक पूजनीय सर्वश्रेष्ठ विभूति हैं।

इस अकिञ्चन-हृदय की श्रद्धा को व्यक्त करने के लिये दक्षिणात्मक ऋपि की यह महार्थ-कृति अत्यन्त आदर के साथ आपके प्रतापी हाथों में समर्पित करने की आज्ञा चाहता हूँ और आशा करता हूँ कि इस पवित्र सम्पर्क से इस ग्रन्थ का गौरव और भी अधिक बढ़ जायगा।

राजपूती बाँकपन का दिलदादा—
क्षेमानन्द 'राहत'

भूमिका

(तामिल-वेद के सम्बन्ध में लोगों की राय)

The Prophets of the world have not emphasised the greatness and power of the Moral law with greater insistence or force; Bhishma or Kautilya or Kamandaka or Ramdas or Vishnu Sharman or Macchiavelli have no more subtle counsel to give on the conduct of the State; 'Poor Richard' has no wiser saw for the raising up of the businessmen; and Kalidasa or Shakespeare have no deeper knowledge of the lover's heart and its varied moods; than this Pariah weaver of Mylapore !

V. V. S. Aiyar

मलयपुर के इस अछूत जुलाहे ने आचार-धर्म की महत्ता और शक्ति का जो वर्णन किया है, उससे संसार के किसी धर्म-संस्थापक का उपदेश अधिक प्रभावयुक्त या शक्तिप्रद नहीं है; जो तत्व इसने वतलाये हैं उनसे अधिक सूक्ष्म वात भीष्म या कौटिल्य, कामंदक या रामदास, विष्णुशर्मा या माइकेवेली ने भी

नहीं कही है; व्यवहार का जो चातुर्य इसने बताया है, उससे अधिक "बेचारे रिचार्ड" के पास भी कुछ नहीं है; और प्रेमी के हृदय और उसकी नानाविध वृत्तियों पर जो प्रकाश इसने डाला है, उससे अधिक पता कालिदास या शेक्सपियर को भी नहीं है !

—वी. वी. एस. ऐयर

One of the highest and purest expressions of human thought.

M. Ariel

मानव-विचार का यह एक उच्चतम और शुद्धतम प्रकाश है।

—एम. एरियल

As essentially the highest type of verbal and moral excellence among the Tamil People as ever Homer was among the Greeks.

Gover

तामिल देश के विचार और आचार की उत्तमता का यह वैसा ही सर्वोत्तम आदर्श है जैसे यूनानियों में होमर है।

—गोवर

तामिल जाति

दक्षिण में, सागर के तट पर, भारतमाता के चरणों की पुजारिन के रूप में, अज्ञात काल से एक महान जाति निवास कर रही है जो 'तामिल' जाति के नाम से प्रख्यात है। यह एक अत्यन्त प्राचीन जाति है; और उसकी सभ्यता संसार की प्राचीन-तम सभ्यताओं के साथ खड़े होने का दावा करती है। उसका अपना स्वतंत्र साहित्य है, जो मौलिकता तथा विशालता में विश्व-विख्यात संस्कृत-साहित्य से किसी भाँति अपने को कम नहीं समझता। यह जाति बुद्धि-सम्पन्न रही है और आज भी इसका शिक्षित समुदाय मेधावी तथा अधिक बुद्धि-शाली होने का गर्व करता है।

इसमें सन्देह नहीं, नख से शिख तक सूफ़ियाना वज़अ की वेश-भूषा से सुसज्जित, तहज़ीब का दिलदादा 'हिन्दुस्तानी' जब किसी श्याम वर्ण के, तहमत बाँधे, अँगोछा ओढ़े, नंगे सिर और नंगे पैर, तथा जूड़ा बाँधे हुए मद्रासी भाई को देखता है, तब उस के मन में बहुत अधिक श्रद्धा का भाव जागृत नहीं होता। साधारणतः हमारे तामिल बन्धुओं का रहन-सहन और व्यवहार इतना सरल और आडम्बर रहित होता है और उनकी कुछ बातें इतनी विचित्र होती हैं कि साधारण यात्री को उनकी सभ्यता

में कभी २ सन्देह हो उठता है। किन्तु नहीं, इस सरलता के भीतर एक निस्सन्दिग्ध सभ्यता है जिसने बाह्य आडम्बर की ओर अधिक दृष्टि-पात न कर के बौद्धिक उन्नति को अपना ध्येय माना है।

तामिल लोग प्रायः चतुर, परिश्रमी और श्रद्धालु होते हैं। इनकी व्यवहार-कुशलता, साहस और अध्यवसाय ने एक समय इन्हें समुद्र का शासक बना दिया था। इनकी नाविक-शक्ति प्रसिद्ध थी। अपने हाथ से बनाये हुए जहाज़ों पर सवार हो कर वे समुद्र-मार्ग से पूर्व और पश्चिम के दूर दूर देशों तक व्यापार के लिये जाते थे। इन्होंने, उसी समय हिन्द-महासागर के कई द्वीपों में उपनिवेश भी स्थापित किये थे। इनके झण्डे पर मछली का चिन्ह रहता था। यह शायद इसलिये चुना गया था कि वे अपने को मीन की ही भाँति जलयान-विद्या में प्रवीण बनाने के उत्सुक थे।

इनकी शिल्पकारी उन्नत दशा को प्राप्त थी। ज़री का काम अब भी बहुत अच्छा होता है। मदुरा के बने हुए कपड़े सारे भारत के लोग चाव से खरीदते हैं। सङ्गीत के तो वे ज्ञाता ही नहीं बल्कि आविष्कर्ता भी हैं। इनकी अपनी संगीत-पद्धति है जो उत्तर भारत में प्रचलित पद्धति से भिन्न है। वह सहज और सुगम तो नहीं, पर पाण्डित्य पूर्ण अवश्य है। हिन्दुस्थानी राग और ग़ज़ल भी ये बड़े शौक से सुनते हैं। गृह-निर्माण कला में एक प्रकार का निरालापन है जो इनके बनाये हुए देवालयों में ख़ास तौर पर प्रकट होता है। इनके देवालय खूब सुदृढ़ और विशाल

होते हैं, जिन्हें हम छोटा मोटा गढ़ कह सकते हैं। देवालयों के चारों ओर प्राचीर होता है; और सिंहद्वार बहुत ही भव्य बनाया जाता है। इस सिंहद्वार के ऊपर 'घंटे' के आकार का एक सुन्दर गुम्बद होता है, जिस में देवताओं आदि की मूर्तियाँ काट कर बनाई जाती हैं; और जिसे ये लोग 'गोपुरम्' के नाम से पुकारते हैं।

तामिल लोगों की वृत्ति धार्मिक होती है और उनकी भावनायें प्रायः भक्ति-प्रधान होती हैं। इन के त्योहार और उत्सव भक्तिरस में डूबे हुए होते हैं। प्रत्येक देवालय के साथ एक बड़ा भारी और बहुत ऊँचा रथ रहता है जिसमें उत्सव के दिन मूर्ति की स्थापना कर के उसका जुलूस निकालते हैं। रथ में एक रस्सा बाँध दिया जाता है, जिसे सैकड़ों लोग मिल कर खींचते हैं। लोग टोलियाँ बना कर गाते हुए जाते हैं और कभी २ गाते-गाते मस्त हो जाते हैं। देवमूर्ति के सामने साष्टाङ्ग प्रणाम करते हैं और कोई कान पर हाथ रख कर उठते बैठते हैं। जब आरती होती है, तब नाम-स्मरण करते हुए दोनों हाथों से अपने दोनों गालों को धीरे २ थपथपाने लगते हैं।

'तामिल नाडू'-यद्यपि प्राकृतिक सौन्दर्य से परिप्लावित हो रहा है, पर 'अय्यङ्गार' जाति को छोड़ कर शारीरिक सौन्दर्य इन लोगों में बहुत कम देखने में आता है। शारीरिक शक्ति में यह अब भी लार्ड मैकाले के जमाने के बंगालियों के भाई ही बने हुए हैं। छोटी जातियों में तो साहस और बल पाया जाता है, पर अपने को ऊँचा समझने वाली जातियों में बल और पौरुष की बड़ा कमी है। चांवल इनका मुख्य आहार है और उसे ही यह 'अन्नम्' कहते हैं। गेहूँ का व्यवहार न होने के कारण अनेक प्रकार के

व्यंजनों से अभी तक ये अपरिचित ही रहे; पर चावलों के ही भाँति भाँति के व्यञ्जन बनाने में ये सुदक्ष हैं। पूरी को ये फलाहार के समान गिनते हैं और 'रसम्' इनका प्रिय पेय है, जो स्वादिष्ट और पाचक होता है। थाली में यह खाना पसन्द नहीं करते, केले के पत्ते पर भोजन करते हैं। इनके खाने का ढङ्ग विचित्र है।

तामिल बहिनें पर्दा नहीं करतीं और न मारवाड़ी-महिलाओं की तरह ऊपर से नीचे तक गहनों से लदी हुई रहना पसन्द करती हैं। हाथों में दो एक चूड़ियें, नाक और कान में हलके जवाहिरात से जड़े, थोड़े से आभूषण उनके लिये पर्याप्त हैं। वह नौ गज़ की रङ्गीन साड़ी पहिनती हैं। कच्छ लगाती हैं और सिर खुला रखती हैं जो बाक़ायदा बँधा रहता है और जूड़े में प्रायः फूल गुंथा रहता है। केवल विधवायें ही सिर को ढँकती हैं। उनके बाल काट दिये जाते हैं और सफ़ेद साड़ी पहिन ने को दी जाती है। बड़े घरानों की स्त्रियाँ भी प्रायः हाथ से ही घर का काम-काज करती हैं। बाज़ार से सौदा भी ले आती हैं और नदी से पीने के लिये रोज़ जल भर लाती हैं। इसीलिये वे प्रायः स्वस्थ और प्रसन्न रहती हैं। घर में या बाहर कहीं भी वे घूँघट तो निकालती ही नहीं; उनके मुख की गम्भीरता और प्रशान्त निश्शङ्क दृष्टि उनके लिये घूँघट से बढ़ कर काम देती है।

तामिल भाषा, एक स्वतंत्र भाषा कही जाती है। अन्य भारतीय भाषाओं की तरह वह संस्कृत से निकली हुई नहीं मानी जाती है। तामिल वर्णमाला के स्वर तो अन्य भारतीय भाषाओं की ही तरह हैं पर व्यञ्जनों में बड़ी विचित्रता है। कवर्ग, चवर्ग, टवर्ग,

तवर्ग और पवर्ग के प्रथम और अन्तिम अक्षर ही तामिल वर्णमाला में रहते हैं; प्रत्येक वर्ग के बीच के तीन अक्षर उसमें नहीं होते। उदाहरणार्थ क, ख, ग, घ, ङ के स्थान पर केवल क और ङ होता है ख, ग, घ, का काम 'क' से लिया जाता है। पर उसमें एक विचित्र अक्षर होता है जो न भारतीय भाषाओं में और न अरबी-फ़ारसी में मिलता है। फ्रांसीसी से वह मिलता हुआ कहा जाता है और उसका उच्चारण 'र' और 'ज़' के बीच में होता है। पर सर्व साधारण ड़ की तरह उसका उच्चारण कर डालते हैं। तामिल भाषा में कठोर अक्षरों का प्रायः प्राधान्य है। प्राचीन और आधुनिक तामिल में भी अन्तर है। प्राचीन ग्रन्थों को समझने के लिये विशेषज्ञता की आवश्यकता है। तामिल भाषा का आधुनिक साहित्य अन्य भारतीय भाषाओं की तरह वर्तमानकालीन विचार से भरा जा रहा है। पर प्राचीन साहित्य प्रायः धर्म-प्रधान है। तामिल सभ्यता और तामिल साहित्य के उद्गम की स्वतंत्रता के विषय में कुछ कहना नहीं; पर इसमें सन्देह नहीं कि आर्य-सभ्यता और आर्य-साहित्य की उन पर गहरी छाप है और आर्य-भावनाओं से वे इतने ओत-प्रोत हैं, अथवा यों कहिये कि दोनों की भावनाओं में इतना सामञ्जस्य है कि यह समझना कठिन हो जाता है कि इनमें कोई मौलिक अन्तर भी है। तामिल में कम्बन की बनाई हुई 'कम्बन रामायण' है जिसका कथानक तो वाल्मीकि से लिया गया है पर भावों की उच्चता और चरित्रों की सजीवता में वह कहीं कहीं, वाल्मीकि और तुलसी से भी बढ़ी-चढ़ी बताई जाती है। माणिक्य वाचक कृत तिरुवाचक भी प्रसिद्ध ग्रन्थ है। पर तिरुवल्लुवर का कुरल अथवा त्रिकुरल जिसके

विचार पाठकों की भेंट किये जा रहे हैं, तामिल भाषा का सर्वोत्कृष्ट ग्रन्थ है, यह तामिल साहित्य का फूल है।

ग्रन्थकार का परिचय

कुरल तामिल भाषा का प्राचीन और अत्यन्त सम्मानित ग्रन्थ है। तामिल लोग इसे पञ्चम वेद तथा तामिल वेद के नाम से पुकारते हैं। इसके रचयिता तिरुवल्लुवर नाम के महात्मा हो गये हैं। ग्रन्थकार की जीवनी के सम्बन्ध में निश्चयात्मक रूप से बहुत कम हाल लोगों को मालूम है। यहाँ तक कि इनका वास्तविक नाम क्या था यह भी निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। क्योंकि तिरुवल्लुवर शब्द के अर्थ होते हैं 'वल्लुवा जाति का एक भक्त'। वल्लुवा जाति की गणना मद्रास की अछूत जातियों में है।

तामिल जन-समाज में एक छन्द प्रचलित है जिससे प्रकट होता है कि तिरुवल्लुवर का जन्म पांड्य वंश की राजधानी मदुरा में हुआ था। परम्परा से ऐसी जन-श्रुति चली आती है कि तिरुवल्लुवर के पिता का नाम भगवन् था जो जाति के ब्राह्मण थे और माता अडि पैरिया अछूत जाति की थीं। इनकी माता का पालन-पोषण एक ब्राह्मण ने किया था और उसी ने भगवन् के साथ उन्हें व्याह दिया। इस दम्पति के सात सन्तानें हुईं, चार कन्यायें और तीन पुत्र, तिरुवल्लुवर सब से छोटे थे। यह विचित्रता की बात है कि अकेले तिरुवल्लुवर ने ही नहीं, बल्कि इन सातों ही भाई-बहिनों ने कवितायें की हैं। उनकी एक बहिन ओय्यार प्रतिभाशाली कवि हुई है।

एक जनश्रुति से ज्ञात होता है कि इस ब्राह्मण पैरिया दम्पति ने किसी कारण-वश ऐसी प्रतिज्ञा की थी कि अब के जो सन्तान होगी उसे जहाँ वह पैदा होगी वहीं ईश्वरार्पित कर देंगे। यह लोग जब भ्रमण कर रहे थे तो मद्रास नगर के समीपस्थ मयलापुर के एक बाग में तिरुवल्लुवर का जन्म हुआ। माता अड़ि मोह के कारण बच्चे को छोड़ने के लिये राजी न होती थी, तब छोटे से तिरुवल्लुवर ने मातृ-स्नेह-विह्वला माता को बोध कराने के लिये कहा—"क्या सब की रक्षा करने वाला वही एक जगत्पिता नहीं है और क्या मैं भी उसी की सन्तान नहीं हूँ ? जो कुछ होना है वह तो होगा ही, फिर माँ ! तू व्यर्थ चिन्ता क्यों करती है ?" इन शब्दों ने काम किया, माता का मोह भङ्ग हुआ और शिशु तिरुवल्लुवर वहीं मयलापुर में छोड़ दिया गया। यह कथानक स्निग्ध है, सुन्दर है हृदय को बोध देने वाला है; किन्तु यह तार्किक तथा वैज्ञानिकों की नहीं, केवल श्रद्धालु हृदयों की सम्पत्ति हो सकता है; और ऐसे ही भोले श्रद्धालु हृदयों की, कि जो तिरुवल्लुवर को मनुष्य या महात्मा नहीं साक्षात् ब्रह्म का अवतार मानते हैं।

तिरुवल्लुवर का पालन-पोषण उनकी शिक्षा-दीक्षा किस प्रकार हुई, उनका बालपन तथा उनकी किशोरावस्था किस तरह बीती यह सब बातें उनके जीवन की अन्यान्य घटनाओं की तरह काल के आवरण में ढकी हुई हैं। सिर्फ इतना ही लोगों को मालूम है कि वह मयलापुर में रहते थे और कपड़े बुनने के काम को अधिक निर्दोष समझ जुलाहा-वृत्ति से अपनी गुजर करते थे। वहीं, मयलापुर में, एलेलिशिङ्गन नाम का एक अमीर समुद्र पर से

व्यापार करनेवाला रहता था जो प्रसिद्ध कप्तान था। वह तिरु-वल्लुवर का घनिष्ट मित्र और श्रद्धालु भक्त था। कहते हैं; उसका एक जहाज़ एक बार रेती में फँस गया और किसी तरह निकाले न निकला तो तिरुवल्लुवर ने वहाँ जाकर कहा—'एलेलैया !' और तुरन्त ही जहाज़ चल निकला। यहाँ लोग जिस प्रकार राजा नल का नाम लेकर पासा डालते हैं वैसे ही भारी बोझ ढोते समय मद्रास के मज़दूर सम्भवतः तभी से 'एलेलैया' शब्द का उच्चारण करते हैं।

तिरुवल्लुवर ने विवाह किया था। उनकी पत्नी का नाम वासुकी था। इनका गार्हस्थ्य जीवन वड़ा ही आनन्द-पूर्ण रहा है। वासुकी मालूम नहीं अछूत जाति की थी या अन्य जाति की; पर तामिल लोगों में उसके चरित्र के सम्बन्ध में, जो किम्वदन्तियाँ प्रचलित हैं, और जिनका वर्णन भक्त लोग वड़े प्रेम और गौरव के साथ करते हैं उनसे तो यह कहा जा सकता है कि वासुकी एक पूज-नीय सच्ची आर्य देवी थी। आर्य-कल्पना ने आदर्श महिला के सम्वन्ध में जो ऊँची से ऊँची और पवित्रतम धारणा वनायी है, जहाँ अभिमानी से अभिमाना मनुष्य श्रद्धा और भक्ति, के साथ अपना सिर झुका देता है, वह उसकी अनन्य पति-भक्ति, उसका विश्वविजयी पातिव्रत्य है। देवी वासुकी में हम इसी गुण को पूर्ण तेज़ से चमकता हुआ पाते हैं। तिरुवल्लुवर के गार्हस्थ्य जीवन के सम्बन्ध में जो कथायें प्रचलित हैं, वे ज्यों की त्यों सच्ची हैं यह तो कौन कह सकता है? पर इसमें सन्देह नहीं कि इससे हमें तामिल लोगों की गार्हस्थ्य जीवन की धारणा का परिचय मिलता है।

कहा जाता है वासुकी अपने पति में इतनी अनुरक्त थीं कि

उन्होंने अपने व्यक्तित्व को ही एकदम भुला दिया था। उनकी भावनाएँ, उनकी इच्छायें यहाँ तक कि उनकी बुद्धि भी उनके पति में ही लीन थी। पति की आज्ञा मानना ही उनका प्रधान धर्म था। विवाह करने से पूर्व तिरुवल्लुवर ने कुमारी वासुकी को आज्ञा-पालन की परीक्षा भी ली थी। वासुकी से कीलों और लोहे के टुकड़ों को पकाने के लिये कहा गया और वासुकी ने विना किसी हुज्जत के, विना किसी तर्क-वितर्क के वैसा ही किया। तिरुवल्लुवर ने वासुकी के साथ विवाह कर लिया और जव तक वासुकी जीवित रहीं, उसी निष्ठा और अनन्य श्रद्धा के साथ पति की सेवा में रत रहीं। तिरुवल्लुवर के गार्हस्थ्य जीवन की प्रशंसा सुनकर एक सन्त उनके पास आये और पूछा कि विवाहित जीवन अच्छा है अथवा अविवाहित ? तिरुवल्लुवर ने इस प्रश्न का सीधा उत्तर न देकर अपने पास कुछ दिन ठहर कर परिस्थिति का अध्ययन करने को कहा।

एक दिन सुवह को दोनों जने ठण्ढा भात खा रहे थे जैसा कि गर्म देश होने के कारण मद्रास में चलन है। वासुकी उस समय कुँए से पानी खींच रही थी। तिरुवल्लुवर ने एकाएक चिल्लाकर कहा 'ओह ! भात कितना गर्म है, खाया नहीं जाता।' वासुकी यह सुनते ही घड़े और रस्सी को एकदम छोड़ कर दौड़ पड़ी और पंखा लेकर हवा करने लगी। वासुकी के हवा करते ही उस रातभर के, पानी में रक्खे हुए ठण्ढे भात से गरम गरम भाफ़ निकली और उधर वह घड़ा जिसे वह अधखिंचा कुँए में छोड़ कर चली आई थी, वैसा का वैसा ही कुँए के अन्दर अधर में लटका रह गया। एक दूसरे दिन सूर्य के तेज प्रकाश में, तिरु-

वल्लुवर जब कपड़ा बुन रहे थे तब उन्होंने बेन को हाथ से गिरा दिया और उसे ढूँढने के लिये चिराग़ मँगाया। बेचारी वासुकी दिन में दिया जलाकर, आँखों के सामने, रोशनी में, फ़र्श पर पड़े हुए बेन को ढूँढने चली। उसे इस बात के बेतुकेपन पर ध्यान देने की फ़ुरसत ही कहाँ थी?

बस, तिरुवल्लुवर का उस संत को यही जवाब था। यदि स्त्री सुयोग्य और आज्ञाधारिणी हो तो सत्य की शोध में जीवन खपाने वाले विद्वानों और सूफ़ियों के लिये भी विवाहित जीवन वांच्छनीय और परमोपयोगी है। अन्यथा यही बेहतर है कि मनुष्य जीवन भर अकेला और अविवाहित रहे। स्त्री वास्तव में गृहस्थ-धर्म का जीवन-प्राण है। घर के छोटे से प्राङ्गण को स्त्री स्वर्ग बना सकती है और स्त्री ही उसे नरक का रूप दे सकती है। इसी ग्रन्थ में तिरुवल्लुवर ने कहा है "स्त्री यदि सुयोग्य है तो फिर ग़रीबी कैसी? और स्त्री यदि योग्य नहीं हो फिर अमीरी कहाँ है?" Frailty thy name is women—दुर्बलते, तेरा ही नाम स्त्री है, ढोल-गँवार-शूद्र-पशु-नारी; स्त्रियश्चरित्रं पुरुषस्य भाग्यं, दैवो न जानाति कुतो मनुष्यः—इस प्रकार के भाव स्त्रियों के व्यवहार से दुःखित होकर प्रायः प्रत्येक भाषा के कवियों ने व्यक्त किये हैं। किन्तु तिरुवल्लुवर ने कहीं भी ऐसी बात नहीं कही। जहाँ तपोमूर्ति वासुकी प्रसन्न सलिला मन्दाकिनी की भाँति उनके जीवन-वन को हरा-भरा और कुसुमित कर रही हो, वहाँ इस प्रकार की भावना ही कैसे उठ सकती है? तिरुवल्लुवर ने तो जहाँ कहा है, इसी ढङ्ग से कहा है कि जो स्त्री बिस्तर से उठते ही अपने पति की पूजा करती है, जल से भरे हुए बादल भी

उसका कहना मानते हैं और वह शायद उन के अनुभव की बात थी।

वासुकी जब तक जीवित रहीं, बड़े आनन्द से उन्होंने गार्हस्थ्य जीवन व्यतीत किया और उसके मरने के बाद वे संसार त्याग कर विरक्त की भाँति रहने लगे। कहा जाता है कि जीवन की सहचरी के कभी न मिटने वाले वियोग के समय तिरुवल्लुवर के मुख से एक पद निकला था जिसका आशय यह है:—

"ऐ प्रिये! तू मेरे लिये स्वादिष्ट भोजन बनाती थी और तूने कभी मेरी आज्ञा की अवहेलना नहीं की! तू रात को मेरे पैर दबाती थी, मेरे सोजाने के बाद सोती थी और मेरे जागने से पहिले जाग उठती थी! ऐ सरले! सो तू क्या आज मुझे छोड़ कर जा रही है? हाय! अब इन आँखों में नींद कब आयेगी?"

यह एक तापस हृदय का रुदन है। सम्भव है, ऐसी स्त्री के वियोग पर भावुक-हृदय अधिक उद्वेग-पूर्ण, अधिक करुण-क्रन्दन करना चाहे, पर यह एक घायल आत्मा का संयत चीत्कार है जिसे अनुभव ही कुछ अच्छी तरह समझ सकता है। हाँ, वासुकी यदि देवी थी तो तिरुवल्लुवर भी निस्सन्देह संत थे। वासुकी के जीवन-काल में तो वह उसके थे ही पर उसकी मृत्यु के बाद भी उसका स्थान उसका ही बना रहा।

कुछ विद्वानों को इसमें सन्देह है कि तिरुवल्लुवर का जन्म अछूत जाति में हुआ। उनका कहना है कि उस समय आज कल के king's Steward के समान 'वल्लवन' नाम का एक पद था और 'तिरु' सम्मानार्थ उपसर्ग लगाने से तिरुवल्लुवर नाम बन गया है। यह एक कल्पना है जिसका कोई विशेष आधार अभी तक

नहीं मिला। यह कल्पना शायद इसलिये की गई है कि तिरुव-ल्लुवर की 'अछूतपन' से रक्षा की जाय। किन्तु इससे और तो कुछ नहीं, केवल मन की अस्वस्थता और दुर्बलता ही प्रकट होती है। किसी महात्मा के महत्व की इससे तिल भर भी वृद्धि नहीं होती कि वह किसी जाति विशेष में पैदा हुआ है। सुन्दर चरित्र और उच्च विचार आज तक किसी देश अथवा समुदाय विशेष की बपौती नहीं हुए हैं और न उन पर किसी का एकाधिपत्य कभी हो ही सकता है। सूर्य के प्रकाश की तरह ज्ञान और चारित्र्य भगवान की यह दो सुन्दरतम विभूतियाँ भी इस प्रकार के भेद-भाव को नहीं जानतीं। जो खुले दिल से इनके स्वागत के लिये तैयार होता है, बस उसी के प्राङ्गण में निर्द्वन्द्व और निस्सङ्कोच-भाव से ये जाकर खेलने लगती हैं।

तिरुवल्लुवर का धर्म

तिरुवल्लुवर किस विशिष्ट सम्प्रदाय के अनुयायी थे, यह विषय बड़ा ही विवादग्रस्त है। शैव, वैष्णव, जैन और बौद्ध सभी उन्हें अपना बनाने की चेष्टा करते हैं। इन सम्प्रदायों की कुछ बातें इस ग्रन्थ में मिलती अवश्य हैं पर यह नहीं कहा जा सकता कि वह इनमें से किसी सम्प्रदाय के पूर्णतः अनुयायी थे। यदि एक मत के अनुकूल कुछ बातें मिलती हैं तो कुछ बातें ऐसी भी मिलती हैं जो उस मत को ग्राह्य नहीं हैं। मालूम होता है कि तिरुवल्लुवर एक उदार धर्म-निष्ठ पुरुष थे, जिन्होंने अपनी आत्मा को किसी मत-मतान्तर के बन्धन में नहीं पड़ने दिया बल्कि सच्चे रत्न-पारखी

की भाँति जहाँ जो दिव्य रत्न मिला, उसे वहीं से ग्रहण कर अपने रत्न-भण्डार की अभिवृद्धि की। धर्म-पिपासु भ्रमर की भाँति उन्होंने इन मतों का रसास्वादन किया पर किसी पुष्प-विशेष में अपने को फँसने नहीं दिया बल्कि चतुरता के साथ सुन्दर से सुन्दर फूल का सार ग्रहण कर उससे अपनी आत्मा को प्रफुल्लित, आनन्दित और विकसित किया और अन्त में अपने उस सार-भूत ज्ञान-समुच्चय को अत्यन्त ललित और काव्य-मय शब्दों में संसार को दान कर गये।

एक बात बड़ी मजेदार है। हिन्दू-धर्म के विभिन्न सम्प्रदायों की तरह ईसाई लोगों ने भी यह दावा पेश किया है कि तिरुवल्लुवर के शब्दों में ईसा के उपदेशों की प्रतिध्वनि है और एक जगह तो कुरल के ईसाई अनुवादक महाशय, डा. पोप यहाँ तक कह उठे—"इसमें सन्देह नहीं कि ईसाई धर्म का उस पर सब के अधिक प्रभाव पड़ा था।" इन लोगों का ऐसा विचार है कि तिरुवल्लुवर की रचना इतनी उत्कृष्ट नहीं हो सकती थी यदि उन्होंने सेन्ट टामस से मयलापुर में ईसा के उपदेशों को न सुना होता। पर आश्चर्य तो यह है कि अभी यह सिद्ध होना बाकी है कि सेन्ट टामस और तिरुवल्लुवर का कभी साक्षात्कार भी हुआ था या नहीं। केवल ऐसा होने की सम्भावना की कल्पना करके ही ईसाई लेखकों ने इस प्रकार की बातें कही हैं और उनके ऐसा लिखने का कारण भी है, जो उनके लेखों से भी व्यक्त होता है। वह यह कि उनकी दृष्टि में ईसाई-धर्म ही सर्वोत्कृष्ट धर्म है, और इतनी उच्चता और पवित्रता अन्यत्र कहीं मिल ही नहीं सकती। यह तो वे समझ ही कैसे सकते हैं कि भारत भी स्वतंत्र रूप से इतनी ऊँची कल्प-

नायें कर सकता है? पर यदि उनको यह मालूम हो जाय कि उनका प्यारा ईसाई-धर्म ही भारत के एक महान् धर्म की प्रेरणा और स्फूर्ति से पैदा हुआ है, और उसकी देशानुरूप बताई हुई नकल है तब तो शायद गर्वोक्ति मुंह की मुंह में ही विलीन हो जायगी।

ईसाई-धर्म उच्च है, इसमें सन्देह नहीं। ईसा के बालक-समान विशुद्ध और पवित्र हृदय से निकला हुआ 'पहाड़ पर का उपदेश' निस्सन्देह बड़ा ही उत्कृष्ट, हृदय को ऊँचा उठाने वाला और आत्मा की मधुर से मधुर तंत्री को झंकृत कर अपूर्व आनन्द देने वाला है। उनके कहने का ढङ्ग अपूर्व है, मौलिक है; पर वैसे ही भावों की मौलिकता का भी दावा नहीं किया जा सकता। जिन्होंने उपनिषदों और ईसा के उपदेशों का अध्ययन किया है, वे दोनों की समानता को देखकर चकित रह जाते हैं और यह तो सब मानते ही हैं कि उपनिषद् ईसा से बहुत पहिले के हैं। बौद्ध-धर्म और ईसाई-धर्म की समानता पर तो खासी चर्चा हो ही रही है और यह भी स्पष्ट है कि बुद्ध की शिक्षा उपनिषद्-धर्म का नया रूप है।

प्रोफ़ेसर मैक्समूलर अपने एक मित्र को लिखते हैं:—

"I fully sympathise with you and I think I can say of myself that I have all my life worked in the same spirit that speaks from your letter, so much so that any of your friends could prove to me what they seem to have said to you namely, "that christianity was but an inferior copy of a greater original. I should bow and

accept the greater original. That there are startling coincidences between Buddhism and christianity, can not be denied and it must likewise be admitted that Buddhism existed atleast 400 years before christianity. I go even further and should feel extremly grateful if any body would point out to me the historical channels through which Buddhism had influenced early christianity. I have been looking for such channels all my life but I have found none."—Maxmuller's letter's on Buddhism.

इसका आशय यह है—"मैं आप से पूर्णतः सहमत हूँ और अपने विषय में तो मैं कह सकता हूँ कि अपने जीवन भर मैंने उसी भावना से कार्य किया है कि जो आपके पत्र से व्यक्त होती है। यहाँ तक कि यदि आपके मित्रों में से कोई इस बात के प्रमाण दे सके जो कि मालूम होता है, उन्होंने आप से कही हैं अर्थात् 'क्रिश्चियानिटी एक महान् मूल-धर्म की छोटी सी प्रतिलिपि मात्र है' तो मैं उस महान् मूल-धर्म को सिर झुका कर स्वीकार कर लूंगा। इससे तो इन्कार किया ही नहीं जा सकता कि बौद्ध-धर्म और ईसाई-धर्म में चौंका देने वाली समानता है और इसको भी स्वीकार ही करना पड़ेगा कि बौद्ध-धर्म क्रिश्चियनिटी से कम से कम ४०० वर्ष पूर्व मौजूद था। मैं तो यह भी कहता हूँ कि मैं बहुत ही कृतज्ञ हूँगा यदि कोई मुझे उन ऐतिहासिक स्रोतों का पता देगा कि जिनके द्वारा प्रारम्भिक क्रिश्चियानिटी पर बौद्ध-

धर्म का प्रभाव पड़ा था । मैं जीवन भर उन स्रोतों की तलाश में रहा हूँ लेकिन अभी तक मुझे उनका पता नहीं मिला ।"

बौद्ध-धर्म की प्रचार-शक्ति बड़ी जबरदस्त थी । बौद्धभिक्षु-संघ संसार के महान् संगठनों का एक प्रबल उदाहरण है, जिसमें राजकुमार और राजकुमारियाँ तक आजन्म ब्रह्मचर्यव्रत धारण कर बौद्ध-धर्म के प्रचार के लिये अपने जीवन को अर्पित कर देते थे। अशोक की बहिन राजकुमारी सङ्घमित्रा ने सिंहलद्वीप में जाकर बौद्ध-धर्म की दीक्षा दी थी । वर्मा, आसाम, चीन, और जापान में तो बौद्ध-धर्म अब भी मौजूद है । पर पश्चिम में भी बौद्ध-भिक्षु अफ़ग़ानिस्तान, फारस और अरब तक भारत के प्राचीन धर्म के इस नवीन संस्करण का शुभ्र उपदेश लेकर पहुँचे थे । तब कौन आश्चर्य है यदि बौद्ध भिक्षुओं के द्वारा प्रतिपादित उदात्त और उच्च धर्म-तत्वों के बीजों को पैलस्टाइन की उर्वरा भूमि ने अपने उदर में स्थान दे, नवीन धर्म-बालक को पैदा किया हो । बहरहाल यह निर्विवाद है कि क्षमा और अहिंसा आदि उच्च तत्वों की शिक्षा के लिये तिरुवल्लुवर को क्रिश्चियानिटी का मुँह ताकने की आवश्यकता न थी । उनका सुसंस्कृत सन्त-हृदय ह: इन उच्च भावनाओं की स्फूर्ति के लिये उर्वर क्षेत्र था । फिर लाखों वर्ष की पुरानी, संसार की प्राचीन से प्राचीन और बड़ी से बड़ी संस्कृति उन्हें विरासत में मिली थी। जहाँ 'धृतिः क्षमा' और 'अहिंसा परमो धर्मः' उपकारिषु यः साधुः, साधुत्वे तस्य को गुणः । अपकारिषु यः साधु स साधुः सद्भिरुच्यते' आदि शिक्षाएँ भरी पड़ी हैं ।

रचना-काल

ऊपर कहा गया है कि एलेला शिङ्गन नाम का एक व्यापारी

अमान तिरुवल्लुवर का मित्र था। कहा जाता है कि यह शिङ्गन इसी नाम के चोल वंश के राजा का छठा वंशज था जो लगभग २०६० वर्ष पूर्व राज्य करता था और सिंहलद्वीप के महावंश से मालूम होता है कि ईसा से १४० वर्ष पूर्व उसने सिंहलद्वीप पर चढ़ाई की, उसे विजय किया और वहाँ अपना राज्य स्थापित किया। इस शिङ्गन और उसके उक्त पूर्वज के बीच में पाँच पीढ़ियें आती हैं और प्रत्येक पीढ़ी ५० वर्ष की मानें तो हम इस निर्णय पर पहुँचते हैं कि पहिली शताब्दि के लगभग कुरल की रचना हुई होगी।

परम्परा से यह जन-श्रुति चली आती है कि कुरल अर्थात् तामिल वेद पहिले पहिल पांड्य राजा 'उग्रवेरु वज्रदि' के राज्य-काल में मदुरा के कवि-समाज में प्रकाश में आया। श्रीमान् एम. श्रीनिवास अय्यङ्गर ने उक्त राजा का राज्यारोहण काल १२५ ईसवी के लगभग सिद्ध किया है। इसके अतिरिक्त तामिल वेद के छठे प्रकरण का पाँचवाँ पद 'शिलप्पधिकरम्' और 'मणि-मेखलै' नामक दो तामिल ग्रन्थों में उद्‌धृत किया गया है और ये दोनों ग्रन्थ, कुछ विद्वानों का कहना है कि ईसा की दूसरी शताब्दि में लिखे गये हैं। किन्तु 'चेरन-चेन-कुहवन' नामक ग्रन्थ के विषय में लिखते हुए श्रीमान् एम. राघव अय्यङ्गर ने यह बतलाया है कि उपरोक्त दोनों पुस्तकें सम्भवतः पाँचवीं शताब्दि में लिखी गई हैं।

इन तमाम बातों का उल्लेख करके श्रीयुत वी. वो. एस. अय्यर इस निर्णय पर पहुँचे हैं कि पहली और तीसरी शताब्दि के मध्य में तिरुवल्लुवर का जन्म हुआ। उक्त दो ग्रन्थ यदि पाँचवीं शताब्दि

में बने हों तब भी इस निश्चय को कोई बाधा नहीं पहुँचती क्योंकि उद्धरण दो शताब्दि बाद भी दिया जा सकता है । इससे पाठक देखेंगे कि आज जो ग्रन्थ-रत्न वे देखने चले हैं, वह लगभग १४०० वर्ष पहिले का बना हुआ है और उसके रचयिता एक ऐसे विद्वान् सन्त हैं जिन्हें जैन, वैष्णव, शैव, बौद्ध और ईसाई सभी अपना बनाने के लिये लालायित हैं । किन्तु वे किसी के पाश में आवद्ध न होकर स्वतंत्र वायु-मण्डल में विचरण करते रहे और वहीं से उन्होंने संसार को निर्लिप्त-निर्विकार रूप में अपना अमृत-मय उपदेश सुनाया है ।

अन्तर-दर्शन

तामिल वेद में तिरुवल्लुवर ने धर्म, अर्थ और काम इन पुरुषार्थ-त्रय पर पृथक् २ तीन प्रकरणों में ऊँचे से ऊँचे विचार अत्यन्त सूक्ष्म और सरस रूप में व्यक्त किये हैं। श्रीयुत वी. वी. एस. अय्यर ने कहा है—"मलयपुर के इस अछूत जुलाहे ने आचार-धर्म की महत्ता और शक्ति का जो वर्णन किया है, उससे संसार के किसी धर्म-संस्थापक का उपदेश अधिक प्रभावयुक्त या शक्तिप्रद नहीं है; जो तत्व इसने बतलाये हैं, उनसे अधिक सूक्ष्म बात भीष्म या कौटिल्य, कामंदक या रामदास, विष्णुशर्मा या माइकेवेली ने भी नहीं कही है; व्यवहार का जो चातुर्य इसने बतलाया है, उससे अधिक " बेचारे रिचार्ड " के पास भी कुछ नहीं है; और प्रेमी के हृदय और उसकी नानाविध वृत्तियों पर जो प्रकाश इसने डाला है, उससे अधिक पता कालिदास या शेक्सपियर को भी नहीं है !"

यह एक भक्त हृदय का उद्गार है और सम्भव है इसमें उछलते हुये हृदय की लालिमा का कुछ अधिक गहरा आभास आ गया हो। किन्तु जो बात कही गई है, उसके कहने का और सत्य के निकट-तम सामीप्य में ले जाने का, यह एक ही ढङ्ग है। जीवन को उच्च और पवित्र बनाने के लिये जिन तत्वों की आवश्यकता है उनका विश्लेषण धर्म के प्रकरण में आ गया है। राजनीति का गम्भीर विषय बड़ी ही योग्यता के साथ अर्थ के प्रकरण में प्रतिपादित हुआ है और गार्हस्थ्य प्रेम की सुस्निग्ध पवित्र आभा हमें कुरल के अन्तिम प्रकरण में देखने को मिलती है।*
यह शायद बहुत बड़ी अतिशयोक्ति नहीं होगी यदि यह कहा जाय कि महान धर्म-ग्रन्थों को छोड़ कर संसार में बहुत थोड़ी ऐसी पुस्तकें होंगी कि जो इसके मुकाबिले की अथवा इससे बढ़ कर कही जा सकें। *एरियल नामक अँग्रेज का कहना है कि कुरल* मानवी विचारों का एक उच्चातिउच्च और पवित्र-तम उद्गार है। गोवर नाम के एक दूसरे योरोपियन का कथन है-'यह तामिल जाति की कविता तथा नीति-सम्बन्धी उत्कृष्टता का निस्सन्देह वैसा ही ऊँचे से ऊँचा नमूना है जैसा कि यूनानियों में 'होमर' सदा रहा है।'

धर्म

तिरुवल्लुवर ने ग्रन्थ के आरम्भ में प्रस्तावना के नाम से चार परिच्छेद लिखे हैं। पहिले परिच्छेद में ईश्वर-स्तुति की है और वहीं पर एक गहरे और सदा ध्यान में रखने लायक अमूल्य

---

* यह प्रकरण पृथक् सुन्दर और सचित्र रूप में प्रकाशित होगा।
—लेखक

सिद्धान्त की घोषणा करते हुए कहा है-"धन, वैभव और इन्द्रिय-सुख के तूफ़ानी समुद्र को वही पार कर सकते हैं कि जो उस धर्म-सिन्धु मुनीश्वर के चरणों में लीन रहते हैं !" संसार में रहने वाले प्रत्येक मनुष्य को यह सांसारिक प्रलोभन बड़े वेग के साथ चारों ओर से आ घेरते हैं। और कोई भी मनुष्य सच्चा मनुष्य कहलाने का दावा नहीं कर सकता जब तक कि वह जीवन की सड़क पर खेलने वाले इन नटखट शैतानी छोकरों के साथ खेलते हुए अथवा होशियारी के साथ इन्हें अपने रङ्ग में रँग कर इनसे बहुत दूर नहीं निकल जाता। संसार छोड़ कर जंगल में भाग जाने वाले त्यागियों की बात दूसरी है किन्तु इन्हें जब कभी जीवन की इस सड़क पर आने का काम पड़ता है, तब प्राय: इनकी जो गति होती है, उसके उदाहरण संसार के साहित्य में पर्याप्त संख्या में मिलते हैं।

इसीलिये इनसे बचाने के लिये संसार का त्याग अधिक उपयोगी सिद्ध नहीं होता और न संसार के अधिकांश लोग कभी ऐसा ही कर सकते हैं। फिर उस विकार-हीन भगवान् ने अपनी लीला की इच्छा से जब इस संसार की रचना की है तब इन मनोमोहक आकर्षक किन्तु धोखा देने वाली लीलाओं की भूल-भुलैयों से बच कर भाग निकलना ही कहाँ तक सम्भव है। यह संसार मानों बड़ा ही सुन्दर 'लुकीलुकैयों' का खेल है। भगवान् ने हमें अपने से जुदा कर के इस संसार में ला पटका और आप स्वयं इन लीलाओं की भूलभुलैयों के अन्त पर कहीं छिप कर जा बैठे और अब हम अपने उस नटखट प्रियतम से मिलने के लिये छटपटा रहे हैं। हमें चलना होगा, इन्हीं भुलभुलैयों के रास्ते

से, किन्तु एक निर्भय और निष्ठावान हृदय को साथ लेकर जिसका अन्तिम लक्ष्य और कुछ नहीं केवल उसी शरारत के पुतले को जा पकड़ना है। मार्ग में एक से एक सुन्दर दृश्य हमें देखने को मिलेंगे जो हमें अपने ही में लीन हो जाने के लिये आकर्षित करेंगे। भाँति २ के रङ्गमञ्चों से उठी हुई स्वर-लहरियाँ हमें अपने साथ उड़ा ले जाने के लिये आ खड़ी होंगी। कितनी मिन्नत, कितनी खुशामद, कितनी चापलूसी होगी इनकी बातों में—किन्तु हमें न तो इनसे भयभीत होकर भागने की आवश्यकता है और न इन्हें आत्म-समर्पण ही करना है। बाग़ के किनारे खिला हुआ गुलाब का फूल सौन्दर्य और सुगन्ध को भेज कर पास से गुजरने वाले योगी को आह्वान करता है किन्तु वह एक सुस्निग्ध दृष्टि डालता हुआ सदय मधुर मुस्क्यान के साथ चला जाता है। ठीक वैसे ही हमें भी इन प्रलोभनों के बीच में से होकर गुज़रना होगा।

इतना ही क्यों, यदि हमारा लक्ष्य स्थिर है, तो हम उस खिलाड़ी की कुछ लीलाओं का निर्दोष आनन्द भी ले सकते हैं और उसके कौशल को समझने में समर्थ हो सकते हैं। जो लक्ष्य को भूल कर मार्ग में खेलने लगता है, उसे तो सदा के लिये गया समझो; किन्तु जिसका लक्ष्य स्थिर है, जिसके हृदय में प्रियतम से जाकर मिलने की सदा प्रज्वलित रहने वाली लगन है, वह किसी समय फ़िसलने वाली ज़मीन पर आकर फिसल भी पड़े, तब भी विशेष हानि नहीं। उसे फ़िसलता हुआ देख कर उसके साथी हँसेंगे, तालियाँ बजायेंगे, और तो और हमारे उस प्रभु के अधरों पर भी एक सदय मुस्क्यान आये बिना शायद न रहे, किन्तु वह धीरे

से उठेगा और कपड़े पोंछ कर चल देगा और देखेगा कि उसके साथी अपनी बिखरी हुई हँसी को अभी समेटने भी नहीं पाये हैं कि वह बहुत दूर निकल आया है ! यात्रा की यह विषमता ही तो सच्चे यात्री का आनन्द है। सैनिक के जीवन का सब से अधिक स्वादिष्ट क्षण वहीं तो होता है न कि जब वह चारों ओर दुर्बल शत्रुओं से घिर जाने पर अपनी युद्ध-कला का आत्यन्तिक प्रयोग करके उन पर विजय पाता है ?

इसीलिये संसार के प्रलोभनों से भयभीत न होकर और पतन के भूत से अपनी आत्मा को दुर्बल न बना कर संसार के जो काम हैं, उन्हें हमें करना चाहिये। किन्तु हमारे उद्योगों का लक्ष्य वही धर्म-सिन्धु मुनीश्वर के चरण हों। यदि हम उन चरणों में लीन रहेंगे तो धन-वैभव और इन्द्रिय-सुख का तूफ़ानी समुद्र हमारे अधीन होगा और हम उस पर चढ़ कर उन चरणों के पास पहुँचने में समर्थ होंगे। भगवान् कृष्ण ने ५००० वर्ष पूर्व इसी मार्ग का दिग्दर्शन कराते हुए कहा था—

यत्करोषि यदश्नासि, यज्जुहोषि ददासि यत्।
यत्तपस्यसि कौन्तेय, तत्कुरुष्व मदर्पणम्॥

अपनी इच्छा की प्रेरणा से नहीं, अपनी वासना के वशीभूत होकर नहीं, बल्कि भगवान् की प्रसन्नता के लिये, ईश्वर के चरणों में भेंट करने के लिये जो मनुष्य काम करने की अपनी आदत डालेगा उसे संसार में रहते हुए, संसार के काम करते हुए भी संसार के प्रलोभन अपनी ओर आकर्षित न कर सकेंगे और न वह तूफ़ानी समुद्र अपने गर्त में डाल कर उसे हज़म कर सकेगा।

प्रस्तावना के चौथे तथा अन्तिम परिच्छेद में धर्म की महिमा का वर्णन करते हुए तिरुवल्लुवर कहते हैं:—

"अपना मन पवित्र रक्खो—धर्म का समस्त सार वस एक इसी उपदेश में समाया हुआ है।" (४. ३४.)

सदाचार का यह गम्भीर सूत्र है। प्राय: काम करते समय हमारे मन में अनेकों सन्देह पैदा होते हैं उस समय क्या करें और क्या न करें इसका निश्चय करना वड़ा कठिन हो जाता है। गीता में भी कहा है—'किं कर्म किमकर्मेति, कवयोप्यत्र मोहिता:' (४. १६.) क्या कर्म है और क्या अकर्म है, इसका निर्णय करने में कवि अर्थात् वहुश्रुत विद्वान् भी मोह में पड़ जाते हैं। किसी ने कहा भी है—'स्मृतयोरनेका: श्रुतयो विभिन्ना:। नैको ऋपिर्यस्य वच: प्रमाणम्'। अनेकों स्मृतियाँ हैं, श्रुतियाँ भी विभिन्न हैं और ऐसा एक भी ऋपि नहीं है जिसकी सभी वातें सभी समयों के लिये हम प्रमाण-स्वरूप मान लें'। ऐसी अवस्था में धर्माधर्म अथवा कर्माकर्म का निर्णय कर लेना वड़ा कठिन हो उठता है।

वास्तव में यदि हम ध्यानपूर्वक देखें तो हमें मालूम होगा कि हम वड़े हों अथवा छोटे, वड़े भारी विद्वान् हों अथवा अत्यन्त साधारण मनुष्य। हम जव कभी भी जो कुछ भी काम करते हैं, अपने मन की प्रेरणा से ही करते हैं। मनुष्य जव किसी विपय का निर्णय करने चलता है तव वह उस विपय के विद्वानों की पक्ष-विपक्ष सम्मतियों को तोलता है और एक ओर निर्णय देता है, पर उसका निर्णय होता है उसी ओर जिस ओर उसका मन होता है क्योंकि वह उसी पक्ष की युक्तियों को अच्छी तरह समझ सकता है और उन्हीं को पसन्द

करता है। जयचन्द्र के हृदय में ईर्ष्या का साम्राज्य था, इसीलिये देश को गुलाम बनाने का भय भी उसे अपने गर्हित कार्य से न रोक सका। विभीषण के हृदय में न्याय और धर्म का भाव था इसीलिये भातृ-प्रेम और स्वदेश की ममता को छोड़कर वह राम से आ मिला। भीष्म पितामह सब कुछ समझते हुए भी दुर्योधन के अन्न से पले हुए मन की प्रेरणा के कारण अधर्म की ओर से लड़ने को बाध्य हुए। राम ने सौतेली माता की आज्ञा से पिता की आन्तरिक इच्छा के विरुद्ध वनवास ग्रहण किया। परशुराम ने पिता की इच्छा से अपनी जननी का वध किया। कृष्ण को कौरव-पाण्डवों को आपस में लड़ाकर भारत को निर्वीर्य बना देने में भी सङ्कोच न हुआ।

इन सब कार्यों के ऊपर शासन करने वाली वही मन की प्रवृत्ति थी। राम के जानकी-त्याग में इस प्रवृत्ति का एक ज़बरदस्त उदाहरण है। आज भी लोग राम के त्याग की इस पराकाष्ठा को समझ नहीं पाते, पर उसे समझने के लिये हमें तर्क और बुद्धि को नहीं, राम के मन को समझना होगा। जब मन का चारों ही ओर इतना ज़बरदस्त प्रभाव है तब तिरुवल्लुवर का यह कहना ठीक ही है कि मन को पवित्र रक्खो यही समस्त धर्म का सार है। मनु ने भी कहा है—'सत्य-पूतां वदेत् वाच, मनः पूतं समाचरेत्'। कालि-दास लिखते हैं—'सतां हि संदेहपदेषु वस्तुषु, प्रमाणमन्तः करण-प्रवृत्तयः!' (शाकुन्तल १. २.) सत्पुरुष सन्दिग्ध बातों में अपने अन्तःकरण के आदेश को ही प्रमाण मानते हैं और सच तो यह है कि हमारी विद्या और बुद्धि, हमारा ज्ञान और विज्ञान कार्य के समय कुछ भी काम न आयेगा यदि हमने मन को पहिले ही

से सुसंस्कृत नहीं कर लिया है। क्या यह अक्सर ही देखने में नहीं आता कि बड़े २ विद्वान् अपनी तर्क-सिद्ध बातों के विरुद्ध काम करते हुए पाये जाते हैं। इसका कारण और कुछ नहीं केवल यही है कि हम अच्छी बातों को बुद्धि से तो ग्रहण कर लेते हैं पर उन्हें मन में नहीं उतारते। इसलिये कोठे की तरह बुद्धि में ज्ञान भरते रहने की अपेक्षा हमें अपने मन को संस्कृत करने की ओर अधिक ध्यान देना चाहिये।

परन्तु मन की पूर्ण शुद्धि और पवित्रता एक दिन अथवा एक वर्ष का काम नहीं है। इसमें वर्षों और जन्मों के अभ्यास की आवश्यकता है। हम जब से दुनिया में आते हैं, जब से होश सम्हालते हैं, तब से हमारे मन पर संस्कार पड़ने शुरु हो जाते हैं। इसलिये पवित्रता और पूर्णता के तीर्थ की ओर जाने वाले यात्री को इसका सदा ध्यान रखने की आवश्यकता है। यह काम धीरे धीरे ज़रूर होता है पर शुरू हो जाने पर यह नष्ट नहीं होता, भगवान् कृष्ण स्वयं इसकी ज़मानत देते हैं—

नेहाभिक्रमनाशोऽस्ति, प्रत्यवायो न विद्यते।
स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य, त्रायते महतो भयात्॥

कर्मयोग मार्ग में एक बार आरम्भ कर देने के बाद कर्म का नाश नहीं होता और विघ्न भी नहीं होते। इस धर्म का थोड़ा सा भी आचरण बड़े भय से संरक्षण करता है (गीता, अ० २ श्लो० ४०)

गृहस्थ का जीवन

ऋषि तिरुवल्लुवर ने धर्म-प्रकरण को दो भागों में विभक्त किया है। एक का शीर्षक है गृहस्थ का जीवन और दूसरा तपस्वी का

जीवन। यह बात देखने योग्य है कि जीवन की चर्चा में गार्हस्थ्य-धर्म को तिरुवल्लुवर ने कितना महत्व दिया है और वह उसे कितनी गौरव-पूर्ण दृष्टि से देखते हैं। प्रायः देखा जाता है कि जो ऊँची आत्मायें एक वार गृहस्थ-जीवन में प्रवेश कर चुकी हैं, वे इस मोह से छूटने अथवा उसमें न पड़ने का सन्देश देना ही संसार के लिये कल्याणकारी समझती हैं। यह सन्देश ऊँचा हो सकता है, पूजा करने योग्य हो सकता है किन्तु संसार के अधिकांश मनुष्यों के लिये यह उपदेश उससे अधिक उपयोग की चीज़ नहीं हो सकता। बाल-बच्चों का बोझ लेकर भगवान् के चरणों की ओर यात्रा करने वाले साधारण स्त्री-पुरुषों को ऐसे सन्देश की आवश्यकता है कि जो इन पैदल अथवा बैलगाड़ी में बैठ कर यात्रा करने वाले लाखों जीवों की यात्रा को स्निग्ध-सुन्दर और पवित्र बनाये रहे। अनुभवी तिरुवल्लुवर ने वही किया है। उनका सन्देश प्रत्येक नर-नारी के मनन करने योग्य है। उन्होंने जन-साधारण के लिये आशा का द्वार खोल दिया है।

तिरुवल्लुवर वर्णाश्रम-व्यवस्था को मानते हैं और कहते हैं—'गृहस्थ आश्रम में रहने वाला पुरुष अन्य तीनों आश्रमों का प्रमुख आश्रय है' (४१) यह एक नित्य सत्य है जिससे कोई इन्कार नहीं कर सकता। गृहस्थ-जीवन की अवहेलना करने वाले लोग भी इस तथ्य को मानने के लिये मजबूर होते हैं और निस्सन्देह जो गृहस्थ अपने गार्हस्थ्य-धर्म का भार वहन करते हुए ब्रह्मचारियों को पवित्र ब्रह्मचर्य-व्रत धारण करने में समर्थ बनाता है, त्यागियों और सन्यासियों को तपश्चर्या में सहायता देता है और अपने भूले-भटके भाइयों को सदय मधुर मुस्कान से

उँगली पकड़ कर आगे बढ़ने के लिए उत्साहित करता है, वही तो संसार के मतलब की चीज़ है। उसे देखकर स्वयं भगवान् अपनी कला अपनी कृति को कृतार्थ समझेंगे। हमारे दाक्षिणात्य ऋषि की घोषणा है—'देखो, गृहस्थ जो दूसरे लोगों को कर्तव्य-पालन में सहायता देता है और स्वयं भी धार्मिक-जीवन व्यतीत करता है, वह ऋषियों से भी अधिक पवित्र है।' (४८) कितना स्पष्ट और बोझ से दबी हुई आत्माओं में आल्हादमयी आशा का संचार करने वाला है यह सन्देश! तिरुवल्लुवर वहीं पर कहते हैं— "मुमुक्षुओं में श्रेष्ठ वे लोग हैं जो धर्मानुकूल ग्राहस्थ्य-जीवन व्यतीत करते हैं।" (४७)

गृहस्थ-आश्रम की नींव में दो ईंटें हैं—स्त्री और पुरुष। इन दोनों में जितनी परिपक्वता, एकात्मीयता होगी, ये दोनों एक दूसरी से जितनी अधिक सटी हुई होंगी, आश्रम की इमारत उतनी ही सुदृढ़ और मजबूत होगी। इन दोनों ही के अन्तःकरण धार्मिकता की अग्नि में पक कर यदि सुदृढ़ बन गये होंगे तो तूफ़ान पर तूफ़ान आयेंगे पर उनका कुछ न बिगाड़ सकेंगे। गार्हस्थ्य-धर्म में स्त्री का दर्जा बहुत ऊँचा है। वास्तव में उसके आगमन से ही गृहस्थ-जीवन का सूत्रपात होता है। इसीलिये गृहस्थ-आश्रम की चर्चा कर चुकते ही तिरुवल्लुवर ने एक परिच्छेद सहधर्मचारिणी के वर्णन पर लिखा है। तिरुवल्लुवर चाहते हैं कि सहधर्मचारिणी में सुपत्नीत्व के सब गुण वर्तमान हों। (५१) स्त्री यदि स्त्रीत्व के गुणों से रहित है तो गार्हस्थ्य-जीवन व्यर्थ है। स्त्री यदि सुयोग्य है तो फिर किसी बात का अभाव नहीं। किन्तु स्त्री के अयोग्य होने पर सब कुछ घर में होते हुए भी मनुष्य के पास

कहने लायक कुछ नहीं होता है। स्त्रीत्व की कोमलतम कल्पना यह है कि वह अपने व्यक्तित्व को ही अपने पति में मिला देती है और इसीलिये वह पुरुष की अर्धाङ्गिनी कहलाती है। यह मानो जीव और ईश्वर के मिलन का एक स्थूल और प्रत्यक्ष भौतिक उदाहरण है और सदा सन्मार्ग का अनुशीलन और अवलम्बन करने से अन्ततः उस स्थिति तक पहुँचा देने में समर्थ है।

'जो स्त्री दूसरे देवताओं की पूजा नहीं करती, मगर बिस्तर से उठते ही अपने पतिदेव को पूजती है—जल से भरे हुए बादल भी उसका कहा मानते हैं।' यह भारतीय भावना सदा से ही रही है और अब तक संस्कार रूप में हमारे अन्दर मौजूद है। इस आदर्श को अपना जीवन-सर्वस्व मान कर व्यवहार करने वाली स्त्रियाँ यद्यपि अब भारतवर्ष में अधिक नहीं हैं फिर भी उनका एक दम ही अभाव नहीं है। आज भी भारत का जन-समूह इस आदर्श को सिर झुका कर मानता है और जिसमें भी यह आदर्श चरितार्थ होता हुआ दिखाई देता है, उसमें राजाओं और महात्माओं से भी अधिक लोगों की श्रद्धा होती है।

स्त्री-स्वातंत्र्य की चर्चा अब भारत में भी फैल रही है। ऐसे काल और ऐसे देश भी इस संसार के इतिहास में अस्तित्व में आये हैं कि जिन में स्त्रियों की प्रभुता थी। आज जो पुरुष के कर्तव्य हैं, उन्हें स्त्रियाँ आगे बढ़ कर दृढ़तापूर्वक करती थीं और पुरुष आजकल की स्त्रियों की भाँति परमुखापेक्षी होते—अपनी स्त्रियों के सहारे जीवित रहते। अमेजन स्त्रियाँ तो बेतरह पुरुषों से घृणा करतीं, उन्हें अत्यन्त हेय समझतीं। जैसे हम समझते हैं कि पुरुषों में ही पौरुष होता है, वैसे ही यह जाति समझती थी कि

वीरता और दृढ़ता जैसे पौरुष-सूचक कार्यों के लिये स्त्रियाँ ही पैदा हुई हैं। पुरुष निरे निकम्मे और बोदे होते हैं। इसीलिये लड़की पैदा होने पर वे खुशी मनाते और लड़के को जन्मते ही प्रायः मार डालते—

पुरुषों की उपर्युक्त अवस्था निस्सन्देह अवाञ्छनीय और दयनीय है पर भारत के उच्च वर्गों की स्त्रियों की वर्तमान अपङ्गुता भी उतनी ही निन्दनीय है। वांछनीय अवस्था तो यह है कि स्त्री और पुरुष दोनों एक दूसरे को प्रेम-पूर्वक सहायता देते हुए पूर्ण बनने की चेष्टा करें। यह सच है, प्रेम में छुटाई बड़ाई नहीं होती। प्रेम में तो दोनों ही एक दूसरे को आत्म-समर्पण कर देते हैं पर लोक-संग्रह के लिये, गृहस्थी का काम चलाने के लिये यह आवश्यक हो उठता है कि दो में से एक दूसरे की अधीनता स्वीकार करे और वह अधीनता जब प्रेम-रस से सनी हुई होगी तो पराकाष्ठा को पहुँचे विना न रहेगी; पर यह प्रेमाभिषिक्त नितान्त समर्पण उन्नति में बाधक होने के बजाय दोनों ही के कल्याण का कारण बन जाता है। ऐसी अवस्था में, संसार की स्थिति और भारत की संस्कृति का ध्यान रखते हुए यही ठीक जँचता है कि तिरुवल्लवर के उपर्युक्त आदर्श के अनुसार ही व्यवहार करें।

स्त्री, सुकोमल भावनाओं की प्रतिमूर्ति है; आत्म-त्याग और सहन-शीलता की देवी है। यह उसी से निभ सकता है कि हीन से हीन मनुष्य को देवता मान कर उसकी पूजा कर सके। 'अन्ध बधिर रोगी अति कोही' आदि विशेषणों वाले पति का भी अपमान न करने का जो उपदेश तुलसीदास जी ने दिया है वह निस्सन्देह बहुत बड़ा है किन्तु यदि संसार में ऐसी कोई स्त्री है कि जो इस

तलवार की धार पर चल सकती है तो वह संसार की बड़ी से बड़ी चीज से भी बहुत बड़ी है। पति-परायणता ही स्त्री के जीवन का सार है और जहाँ पति तिरुवल्लुवर हो, वहाँ वासुकी बनना तो स्वर्गीय आनन्द का आस्वादन करना है। स्त्री का अपने पति के चरणों में लीन हो जाना, उसकी आज्ञाधारिणी होना, कल्याण का राजमार्ग है। पर एक विचित्र भयङ्कर अपवाद है जिससे इन दिनों मुमुक्षु स्त्री को सावधान रहना परमावश्यक है। पति की आज्ञा अनुल्लंघनीय है बशर्ते कि वह स्त्री-धर्म के प्रतिकूल न हो। द्विजेन्द्रलाल राय ने 'उस पार' में सरस्वती से जो कहलाया है वह ध्यान देने योग्य है। सरस्वती अपने दुष्ट पति से जो कहती है उसका सार यह है:—

'सतीत्व मेरा देवता है। तुम मेरे पति, उस देवता की आराधना के साधन हो—देवता को प्रसन्न करने के लिये पत्र-पुष्प मात्र हो'।

यह कहा जा सकता है कि स्त्री का साध्य सतीत्व है और पति उसका बड़ा ही सुन्दर साधन है। सतीत्व इष्ट देव है और पति वहाँ तक पहुँचाने वाला गुरु है। सतीत्व निराकार ईश्वर है और पति उसकी साकार प्रतिमा। पति के लिये यदि सारा संसार छोड़ा जा सकता है तो जरूरत पड़ने पर सतीत्व के लिये पति भी छोड़ दिया जा सकता है।

सन्तान

'सुसम्मानित पवित्र गृह सर्वश्रेष्ठ वर है, और सुयोग्य सन्तति उसके महत्व की पराकाष्ठा है' (६०)

इस पद में तिरुवल्लुवर ने गृहस्थ-धर्म का सार खींचकर रख दिया है। गृहस्थ के लिये इससे बढ़कर और कोई बात नहीं हो सकती कि वह एक 'सुसम्मानित पवित्र गृह' का स्वामी अथवा अधिवासी हो। सच है, "जिस मनुष्य के घर से सुयश का विस्तार नहीं होता, वह मनुष्य अपने दुश्मनों के सामने गर्व से माथा ऊँचा करके सिंह-ठवनि के साथ नहीं चल सकता"। (५९) इसलिये यह आवश्यक है कि हम सतत ऐसे प्रयत्न में संलग्न रहें कि जिससे शुद्ध संस्कार और सदाचार-पूर्ण वातावरण हमारे घर की बहुमूल्य सम्पत्ति हो और हम उसकी अभिवृद्धि और रक्षा में दत्त-चित्त रहें। पर यह परम पवित्र ईश्वरीय प्रसाद यों ही, ज़बरदस्ती, लकड़ी के बल से हमें प्राप्त नहीं हो सकता, इसके लिये हमें खुद अपने को योग्य बनाना होगा। जो रूह हम अपने घर में फूँकना चाहते हैं, उसकी हमें स्वयं आराधना करनी होगी। इसलिये तिरुवल्लुवर सच्ची मर्दानगी की ललकार कर घोषणा करते हुए कहते है; "शाबास है, उसकी मर्दानगी को, कि जो पराई स्त्री पर नज़र नहीं डालता! वह केवल नेक और धर्मात्मा ही नहीं, वह सन्त है!" (१४८) वह सन्त हो या न हो किन्तु वह मर्द है, सच्चा मर्द है और ऐसे मर्द पर सैकड़ों सन्त और धर्मात्मा अपने को निछावर कर देंगे।

ऐसे ही मर्द और ऐसी ही साध्वी स्त्रियाँ सुयोग्य सन्तति पाने के हक़दार होते हैं। गृहस्थ-धर्म का चरम उद्देश्य वास्तव में यही है कि मनुष्य मिलजुल कर अपनी उन्नति करते हुए भगवान् की बनाई हुई इस लीलामय कृति को जारी रक्खे और उसके सौन्दर्य की अभिवृद्धि करे। इस संसार पर शासन करने वाली

सत्ता की, मालूम होता है, यह आन्तरिक इच्छा है कि स्त्री और पुरुष अपने गुणों और अनुभवों की सारभूत एक प्रतिमूर्ति अपने पीछे अवश्य छोड़ जायँ और इसीलिये काम-वासना जैसा दुर्दमनीय प्रलोभन उसने प्राणियों के पीछे लगा दिया है। किन्तु मनुष्य का यह कर्तव्य है कि वह अपने इस काम को होशियारी के साथ करे। भगवान् का काम इससे पूरा न होगा कि हम अनेकों मानवी कीड़ों-मकोड़ों की अभिवृद्धि करके चल दें। उसकी इच्छा है कि हम संसार के सद्गुणों का सञ्चय करें और उस समुच्चय को पुत्र के रूप में मूर्तिमान् बनाकर संसार को दान कर जायँ। हम सुयोग्य सन्तति प्राप्त कर सकते हैं, बशर्ते कि हम उसकी इच्छा करें, उसके लिये चेष्टा करें और अपने को योग्य बनावें।

"पुत्र के प्रति पिता का कर्तव्य क्या है? बस यही कि वह उसे सभा में प्रथम पंक्ति में बैठने योग्य बनाये।" (६७) इसके अतिरिक्त एक खास बात जो तिरुवल्लुवर चाहते हैं वह सन्तान का निष्कलंक आचरण है। इसके लिये वे कहते हैं—"वह पुरुष धन्य है जिसके बच्चों का आचरण निष्कलङ्क है—सात जन्म तक उसे कोई बुराई छू न सकेगी।" (६२) बुद्धिमान्, सदाचारी और योग्य सन्तान तिरुवल्लुवर पसन्द करते हैं और वे चाहते हैं कि माता-पिता इसे अपना कर्तव्य समझें कि वह ऐसी ही सन्तान पैदा करें और शिक्षा-दीक्षा देकर उसे ऐसा ही बनावें। यह बात अब निर्विवाद है कि बालक की शिक्षा उसी समय से शुरू हो जाती है कि जब वह गर्भ में आता है और यह शिक्षा उस समय तक बराबर जारी रहती है जब तक कि वह मृत्यु की गोद में सो नहीं जाता। यह बात भी निस्सन्दिग्ध है कि बाल्य-काल में जो

संस्कार पड़ जाते हैं, वे स्थायी और बड़े ही प्रबल होते हैं। इसलिये योग्य सन्तान पैदा करने की इच्छा रखने वालों को चाहिये कि वे जैसी सन्तान चाहते हैं, वैसी भावनाओं और वैसे गुणों को अपने अन्दर आश्रय दें और बालक के गर्भ में आने के बाद कोई ऐसी चेष्टा न करें जो बुरी हो। एक बात और है जिसे हम प्रायः भूल जाते हैं। लोग समझते हैं कि बालक तो बालक ही है, वह कुछ सुनता-समझता थोड़े ही है। इसीलिये जो बातें हम समझदार आदमियों के सामने करना पसन्द नहीं करेंगे, उन्हें छोटे २ बच्चों की मौजूदगी में करने में ज़रा भी नहीं झिझकते।

वास्तव में यह बड़ी भारी भूल है, जिसके कारण बच्चों के विकास पर अज्ञात रूप से भयङ्कर आघात हो रहा है। बच्चे देखने में निर्दोष और भोले-भाले अवश्य हैं पर संस्कार ग्रहण करने की उनमें बड़ी ज़बरदस्त और अद्भुत शक्ति है। वे जो कुछ देखते और सुनते हैं, उसका सूक्ष्मातिसूक्ष्म प्रभाव उन पर पड़े बिना नहीं रहता जो आगे चलकर प्रबल बन जाता है। इसलिये यदि बालक अनन्य भाव से अपने खिलौने के साथ खेलने में मस्त हो या चारपाई पर पड़ी हुई किताब को फाड़ने के महान प्रयास में व्यस्त हो तो यह न समझो कि यह निरा बालक है, वह हमारी बातें समझ नहीं सकता; बल्कि वास्तव में यदि यह इच्छा है कि हमारे बालक पर कोई बुरा संस्कार न पड़े तो यह समझ लो कि यह बालक नहीं है स्वयं भगवान् बालक का रूप धारण करके हमारी बातों को देखने और सुनने के लिये आ बैठे हैं।

सन्तान-पालन का उत्तरदायित्व जितना महान है, भगवान्

ने कृपा करके उसे उतना ही सुस्निग्ध भी बना दिया है। बच्चों का प्रेम अलौकिक है। वह हमारे हृदय की कठोरता, दुर्बलता और परिश्रान्ति को दूर करके उसे सबल और पवित्र बना देता है। बच्चे मानो चलते-फिरते, हँसते-बोलते खिलौने हैं। यह सजीव कठपुतलियाँ हमारा दिल बहलाने के लिये भगवान् ने भेजी हैं। जब हम ऊषा की पवित्र आभा को देखते हैं, जब हम गुलाब की शुगुफ्तगी और ताजगी से प्रभावित होते हैं, जब बुलबुल की मनोमोहक स्वर-लहरी पर हमारे कान अनायास ही आकर्षित हो जाते हैं, तब हम समझते हैं कि क्यों भगवान् ने इन सब गुणों का एक ही जगह, हमारे बच्चों में, समावेश कर दिया है। "वंशी की ध्वनि प्यारी और सितार का स्वर मीठा है—ऐसा वेही लोग कहते हैं जिन्होंने अपने बच्चों की तुतलाती हुई बोली नहीं सुनी है।" (६६) तिरुवल्लुवर बहुत ठीक कह गये हैं "बच्चों का स्पर्श शरीर का सुख है और कानों का सुख है उनकी बोली को सुनना" (६५) यह हमारे अनन्य परिश्रम का अनन्य पारितोषिक है। पर यह पारितोषिक इसीलिये दिया गया है कि हम अपने उत्तरदायित्व को ईमान्दारी के साथ निभावें।

सन्तान का क्या कर्तव्य है? इस महान् गूढ़ तत्व को तिरुवल्लवर अत्यन्त सूक्ष्म किन्तु वैसे ही स्पष्ट रूप में कहते हैं—

"पिता के प्रति पुत्र का कर्तव्य क्या है? यही कि संसार उसे देखकर उसके पिता से पूछे—किस तपस्या के बल से तुम्हें ऐसा सुपुत्र प्राप्त हुआ है?"

सद्ग्रहस्थ के गुण

मनुष्य किस प्रकार अपने को उच्च और सफल सद्ग्रहस्थ

बना सकता है, उस मार्ग का दिग्दर्शन अगले परिच्छेदों में कराया गया है। तिरुवल्लुवर इन सद्गुणों में सब से पहिले प्रेम की चर्चा करते हैं, मानों यह सब गुणों का मूल-स्रोत है। जो मनुष्य प्रेम के रहस्य को समझता है और जो प्रेम करना जानता है उसे आत्मा को उच्च बनाने वाले अन्य सद्गुण अनायास ही प्राप्त हो जाते हैं। तिरुवल्लुवर का यह कथन अनूठा है—"कहते हैं, प्रेम का मज़ा चखने ही के लिये आत्मा एक बार फिर अस्थि-पिञ्जर में बन्द होने के लिये राज़ी हुआ है।" बुरों के साथ भी प्रेममय व्यवहार करने का ही उनका अनुरोध है। (७६) कृतज्ञता का उपदेश देते हुए वे कहते हैं—"उपकार को भूल जाना नीचता है; किन्तु यदि कोई भलाई के बदले बुराई करे तो उसको फ़ौरन ही भुला देना शराफ़त की निशानी है।" (१०८) आत्म-संयम के विषय में गृहस्थ को व्यावहारिक उपदेश दिया है। यह बिलकुल सच है—"आत्म-सँयम से स्वर्ग प्राप्त होता है, किन्तु असंयत इन्द्रिय-लिप्सा रौरव नरक के लिये खुला राज-मार्ग है"। (१२१) सदाचार पर खासा ज़ोर दिया है। पृथ्वी की तरह क्षमावान होना चाहिये, क्षमा, तपश्चर्या से भी अधिक महत्व-पूर्ण है। बहुत से ऐसे तपस्वी हुए हैं जो ज़रा २ सी बात पर नाराज़ होकर दूसरे का नाश करने के लिये अपने तप का ह्रास कर बैठे हैं। तिरुवल्लुवर कहते हैं—"संसार-त्यागी पुरुषों से भी बढ़ कर सन्त वे हैं जो अपनी निन्दा करने वालों की कटु-वाणी को सहन कर लेते हैं"। (१५९) आगे चल कर ईर्ष्या न करना, चुगली न खाना, पाप-कर्मों से डरना आदि उपदेश हैं। गृहस्थ-जीवन के अन्त में कीर्ति का सात्विक प्रलोभन देकर, मनुष्यों को सत्कर्मों की ओर प्रेरित करने का

प्रयास किया है। 'बदनाम लोगों के बोझ से दबे हुए देश को देखो, उसकी समृद्धि भूतकाल में चाहे कितनी ही बढ़ी-चढ़ी क्यों न रही हो, धीरे धीरे नष्ट हो जायगी'—इस पद को देखकर अनायास ही भारतवर्ष की याद हो आती है। तिरुवल्लुवर कहते हैं, " वे ही लोग जीते हैं जो निष्कलङ्क जीवन व्यतीत करते हैं और जिनका जीवन कीर्ति-विहीन है, वास्तव में वे ही मुर्दा हैं" (२३०)

तपस्वी का जीवन

इसके बाद धर्म-प्रकरण के अन्तर्गत तिरुवल्लुवर ने तपस्वी-जीवन की चर्चा की है और इसे उन्होंने संयम और ज्ञान—इन दो भागों में विभक्त किया है। सब से पहिले उन्होंने दया को लिया है। जो मनुष्य अपने पराये के भाव को छोड़ कर एकात्म्य-भाव का सम्पादन करता है उसके लिये सब पर दया करना आवश्यक और अनिवार्य है। 'विकृत चित्त वाले मनुष्य के लिये सत्य को पा लेना जितना सहज है, कठोर हृदय पुरुष के लिये नेकी के काम करना उतना ही आसान है'—यह तिरुवल्लुवर का मत है। दया यदि तपस्वियों का सर्वस्व है तो वह गृहस्थों का सर्वोच्च भूषण है।

तपस्वी जीवन में तिरुवल्लुवर मक्कारी को बहुत बुरा समझते हैं। "खुद उसके ही शरीर के पंचतत्व मन ही मन उस पर हँसते हैं जब कि वह मक्कार की चालबाज़ी और ऐयारी को देखते हैं।" (२६१) 'विषकुम्भं पयोमुखम्' लोगों को अन्त में पछताना पड़ेगा। ऐसे लोगों को वे घुँघची के सदृश समझते हैं कि

जिसका वाह्य तो सुन्दर होता है पर दिल काला होता है। तिरुव-ल्लुवर चेतावनी देते हुए कहते हैं—'तीर सीधा होता है और तम्बूरे में कुछ टेढ़ापन होता है, इस लिये आदमियों को सूरत से नहीं बल्कि उनके कामों से पहिचानो।" (२६९)

तिरुवल्लुवर सत्य को बहुत ऊँचा दर्जा देते हैं। एक जगह तो वह कहते हैं—"मैंने इस संसार में बहुत सी चीजें देखी हैं, मगर मैंने जो चीजें देखी हैं उनमें सत्य से बढ़ कर और कोई चीज नहीं है।" (२८०) पर तिरुवल्लुवर ने सत्य का जो लक्षण बताया है, वह कुछ अनूठा है और महाभारत में वर्णित 'यद्भूत-हितमत्यन्तं, एतत्सत्यं मतं मम' से मिलता जुलता है। तिरुवल्लुवर पूछते हैं—"सच्चाई क्या है" ? और फिर उत्तर देते हुए कहते हैं, " जिससे दूसरों को किसी तरह का जरा भी नुकसान न पहुँचे, उस बात को बोलना ही सच्चाई है।" (२७१) मुझे भय है कि सत्य का यह लक्षण लोगों को प्रायः मान्य न होगा। पर तिरुवल्लुवर यहीं नहीं रुक जाते, वह तो एक कदम और आगे बढ़ कर कहते हैं—" उस झूठ में भी सच्चाई की ख़ासियत है जिसके फल-स्वरूप सरासर नेकी ही होती हो "। (२७२) तिरु-वल्लुवर शब्दों में नहीं, सजीव भावना में सत्य की स्थापना करते हैं। जो लोग कड़वी और दूसरों को हानि पहुँचाने वाली बात कहने से नहीं चूकते, बल्कि मन में अभिमान करके कहते हैं, 'हमने तो जो सत्य बात थी वह कह दी।' वह यदि तिरुवल्लु-वर द्वारा वर्णित सत्य के लक्षण पर किञ्चित् ध्यान देंगे तो अनुचित न होगा। प्रायः लोग 'सत्य' को ही इष्ट देवता मानते हैं पर तिरुवल्लुवर सत्य को संसार में सब से बड़ी चीज़ मानते हुए

भी उसे स्वतंत्र 'साध्य' न मान कर संसार के कल्याण का 'साधन' मानते हैं।

क्रोध न करने का उपदेश देते हुए कहा है—"क्रोध जिसके पास पहुँचता है उसका सर्वनाश करता है और जो उसका पोषण करता है उसके कुटुम्ब तक को जला डालता है।" यह उपदेश जितना तपस्वी के लिए है लगभग उतना ही अन्य लोगों के लिये भी उपादेय है। अहिंसा का वर्णन करते हुए तिरुवल्लुवर उसे ही सब से श्रेष्ठ बताते, और ऐसा मालूम होता है कि वह उस समय यह भूल जाते हैं कि पीछे सत्य को वे सब से बड़ा बता चुके हैं। "अहिंसा सब धर्मों में श्रेष्ठ धर्म है, सच्चाई का दर्जा उसके बाद है।" पर यह जटिल विषमता दूर हो जायगी जब हम यह देखेंगे कि तिरुवल्लुवर के 'सत्य' और 'अहिंसा' की तह में एक ही भावना की प्राणप्रतिष्टा की हुई है। वास्तव में तिरुवल्लुवर का सत्य ही अहिंसामय है। (देखिये टिप्पणी पद संख्या ३९३)

ज्ञान-खण्ड में 'सांसारिक पदार्थों की निस्सारता' 'त्याग' और 'कामना का दमन' आदि परिच्छेद पढ़ने और मनन करने योग्य हैं। तपस्वी-जीवन के अन्तगत जो बातें आई हैं, वे तपस्वियों के लिये तो उपादेय हैं ही पर जो गृहस्थ जितने अंश तक उन बातों का अपने अन्दर समावेश कर सकेगा वह उतना ही उच्च, पवित्र और सफल गृहस्थ हो सकेगा। इसी प्रकार आगे 'अर्थ' के प्रकरण में जो बातें कही गई हैं वे यद्यपि विशेष रूप से राजा और राज्य-तंत्र को लक्ष्य में रख कर लिखी हैं, पर सांसारिक उन्नति की इच्छा रखने वाले सर्वसाधारण गृहस्थ भी अवश्य ही उनसे लाभ उठा सकते हैं।

अर्थ

इस प्रकरण में तिरुवल्लुवर ने विस्तारपूर्वक राजा और राज्य-तन्त्र का वर्णन किया है। कवि की दृष्टि में यह विषय कितना महत्वपूर्ण है, यह इसीसे जाना जा सकता है कि अर्थ का प्रकरण धर्म के प्रकरण से दुगना और काम के प्रकरण से लगभग तिगुना है। राजा और राज्य के लिये जो बातें आवश्यक हैं, उनका व्यावहारिक ज्ञान इसके अन्दर मिलेगा। यदि नरेश इस ग्रन्थ का अध्ययन करें और राजकुमारों को इसकी शिक्षा दिलायें तो उन्हें लाभ हुए बिना न रहे। मद्रास प्रान्त के राजा और ज़मींदार विधिपूर्वक इस ग्रन्थ का अध्ययन करते और अपने बच्चों को पढ़ाते थे। राज-काज से जिन लोगों का सम्पर्क है, उन्हें अर्थ के प्रकरण को एक बार देख जाना आवश्यक है।

नरेशों और ख़ास कर होनहार राजकुमारों को यह बात ध्यान में रखनी चाहिये कि वे मनुष्य हैं। जिनकी सेवा के लिये भगवान् ने उन्हें भेजा है वे स्वयं भी उन्हीं में के हैं। उनका सुख-दुख, उनका हानि-लाभ अपना सुख-दुख और अपना हानि-लाभ है। आज बाल्य-काल से ही उनके और उनके साथियों के बीच में जो भिन्नता की भींत खड़ी कर दी जाती है, वह सुखकर हो ही कैसे सकती है? यह याद दिलाने की जरूरत नहीं कि भारतवर्ष के उत्कर्ष- काल में राजकुमार लँगोट बन्द ब्रह्मचारियों की भाँति ऋषियों के आश्रम में विद्याध्ययन करने जाते थे और वहाँ के पवित्र वायु-मण्डल में रहकर शरीर, बुद्धि और आत्मा इन तीनों को विकसित और पुष्ट करते थे। किन्तु आज अस्वाभाविक और विकृत वाता-

वरण में रहकर वे जो कुछ सीख कर आते हैं, वह इस बूढ़े भारत के मर्मस्थल को वेधने वाली राजस्थान की एक दर्द-भरी अकथ कहानी है।

एक बार एक महाराजकुमार के विद्वान् संरक्षक ने मुझ से कहा था कि इन राजाओं का दिमाग़ झूठे अभिमान से इतना भरा रहता है कि वह स्वस्थ-चित्त और विमल मस्तिष्क के साथ विचार नहीं कर सकते और मौक़ा पड़ने पर कूटनीति का मुक़ा-बला करने में असमर्थ होते हैं। इसमें इनका क्या दोष? इनकी शिक्षा-दीक्षा ही ऐसी होती है। बचपन से ही स्वार्थी और ख़ुशा-मदी लोग और कभी २ प्रेमी हितू भी अज्ञानवश उनके इस अभिमान को पोषित करते रहते हैं। इनका अधिकांश समय संसार के सुख-दुःख और कठोर वास्तविकता से परिपूर्ण इस विश्व से परे एक अहम्मन्य काल्पनिक जगत् में ही व्यतीत होता है। वे भूल जाते हैं कि हम संसार के कल्याण के लिये, अपने भाइयों की विनम्र सेवा के लिये भगवान् के हाथ के औज़ार के रूप में अवतीर्ण हुए हैं।

जिनके पूर्वजों ने अपने भुज-बल के सहारे राज्य स्थापित किये, उन्हें बनाया और बिगाड़ा, आज उन्हीं वीरों के वंशज अपने बचे-खुचे गौरव को भी *क़ायम रखने में इतने असमर्थ क्यों हैं?* जो सिंह-शावक अपनी निर्भीक गर्जना से पार्वत्य कन्दराओं को गुञ्जारित करते थे, आज वे पाले जाते हैं सोने के पिंजड़ों में और वह पहिनते हैं सोने की हथकड़ियाँ और बेड़ियाँ। दूरदर्शी विज्ञान, हृदय के अन्तस्तल में घुसकर उन्हें अपने मतलब की चीज़ बना रहा है। हमारे प्राचीन संस्कार उन्हें भरसक रोकने

की चेष्टा करते हैं और पूर्वजों की वीर आत्मायें उन्हें तड़फड़ा कर आह्वान करती हैं; किन्तु हाय! यहाँ सुनता कौन है? सुनकर समझने की और उठकर चलने की अब शक्ति भी कहाँ है?

उस दिन एक विद्वान् और प्रतिष्ठित नरेश को मैं तामिल वेद के कुछ उद्धरण सुना रहा था। 'वीर योद्धा का गौरव' शीर्षक परिच्छेद सुनकर उन्होंने एक दोहा कहा जिसे मैंने तत्काल उनसे पूछकर लिख लिया कि कहीं भूल न जाऊँ। किन्तु किसी पुण्य-चरित्र चारण का बनाया हुआ वह प्यारा प्यारा पद्य मेरे दिमाग़ से ऐसा चिपका कि फिर भुलाये से भी न भूला। अपने स्थान पर पहुँच कर न जाने कितनी बार मन ही मन मैंने उसे गुनगुनाया और न जाने कितनी बार अपने को भूल कर उसे गाया। मैं गाता था और मेरी चिर-सहचरी कल्पना अभी अभी वीते हुए गौरवशाली राजपूती ज़माने की वीरता को रङ्ग से रंगे हुए चित्रों को चित्रित करती जाती थी। आहा, कैसे सुन्दर, कैसे पवित्र और हृदय को उन्मत्त बना देने वाले थे वे दृश्य। मैं मस्त था और मुझे होश आया उस समय कि जब दरबान ने आकर ख़बर दी कि दीवान साहब मिलने आये हैं।

वह पद्य क्या है, राजपूती हृदय की आन्तरिक वीर भावना का प्रकाश है। महावर लगाने के लिये उद्यत नाइन से एक नव-विवाहिता राजपूत-बाला कहती है—

नाइन आज न मांड पग, काल़ सुणाजे जंग।
धारा लागे सो धणी, तब दीजै घण रंग॥

'अरी नाइन! सुनते हैं कि कल युद्ध होने वाला है, तब फिर आज यह महावर रहने दे। जब मेरे पति-देव युद्ध-क्षेत्र में वीरता

के साथ लड़ते हुए घायल हों और उनके घावों से लाल लाल रक्त की धार छूटे तब तूँ भी खूब हुलस हुलस कर गहरे लाल रंग की महावर मेरे पैरों में रंगना'। एक वीर सती स्त्री के सौभाग्य की यही तो परम सीमा है।

वह गौरव-शाली सुनहरा ज़माना था कि जब भारत में ऐसी अनेकों स्त्रियाँ मौजूद थीं। उन्होंने भीरु से भीरु मनुष्यों के हृदय में भी रुह फूँक कर बड़ी बड़ी सेनाओं से उन्हें जुझाया है। अतीत काल की वह कहानी ही तो भारत की एक मात्र सम्पत्ति है। हे ईश्वर, हम गिरें तो गिरें पर दया करके हमारी माताओं के कोमल हृदय में एक बार वह अग्नि फिर प्रज्वलित कर दे।

इस पुस्तक का परिचय और उसकी उपलब्धि जिन मित्रों के द्वारा मुझे हुई उनका मैं कृतज्ञ हूँ और जिन लोगों ने इसका अनुवाद करने में प्रोत्साहन तथा सहायता प्रदान की है उन सब का मैं आभार मानता हूँ। श्रीयुत हालास्याम अय्यर बी० ए० बी० एल० का मैं विशेष-रूप से कृतज्ञ हूँ जिन्होंने अनुवाद को मूल तामिल से मिलाने में सहायता प्रदान की। स्वर्गीय श्रीयुत बी० बी० एस अय्यर का मैं चिर-ऋणी रहूँगा जिनके कुरल के आधार पर यह अनुवाद हुआ है। वे तामिल जाति की एक विशिष्ट विभूति थे। मेरी इच्छा थी कि मैं मदरास जाकर सामग्री एकत्रित कर उनके पास बैठ कर यह भूमिका लिखूँ; किन्तु मुझे यह सुन कर दुःख हुआ कि वे अपने स्थापित किये हुए गुरुकुल के एक ब्रह्मचारी को नदी में डूबने से बचाने की चेष्टा में स्वयं डूब गये! उनकी आत्मा यह देख कर प्रसन्न होगी कि उनका प्यारा

श्रद्धा-भाजन ग्रन्थ भारत की राष्ट्र-भाषा में अनुवादित होकर हिन्दी-जनता के सामने उपस्थित हो रहा है।

इस ग्रन्थ की भूमिका श्रीयुत सी. राजगोपालाचार्य ने हमारे निवेदन को स्वीकार कर लिख दी है। आप उसे लिखने के पूर्ण अधिकारी भी थे। अतः हम आपको इस कृपा के लिये हृदय से धन्यवाद देते हैं।

यह ग्रन्थ-रत्न जितना ऊँचा है, उसीके अनुकूल किसी ऊँची आत्मा के द्वारा हिन्दी-जनता के सामने रक्खा जाता, तो निस्सन्देह यह बहुत ही अच्छा होता, पर इसके मनन और घनिष्ठ संसर्ग से मुझे लाभ हुआ है और इसलिये मैं तो अपनी इस अनधिकार चेष्टा का कृतज्ञ हूँ। मुझे विश्वास है कि जिज्ञासु पाठकों को भी इससे अवश्य आनन्द और लाभ होगा। पर मेरे अज्ञान और मेरी अत्यन्त क्षुद्र शक्तियों के कारण इसमें जो त्रुटियाँ रह गई हों, उनके लिये सहृदय विद्वान् मुझे क्षमा करें।

राजस्थान हिन्दी सम्मेलन अजमेर। १७-१२-१९२६	मातृ-भाषा का अकिञ्चन सेवक **क्षेमानन्द 'राहत'**

लागत का ब्योरा

कागज़	४३०) रु०
छपाई	३२०) "
बाइंडिंग	६०) "
लिखाई, व्यवस्था, विज्ञापन आदि खर्च	४५५) "
	१२६५) रु०

बढ़िया कागज़ पर छपी हुई १५०० प्रतियों का लागत मूल्य ७०३)
साधारण कागज़ पर छपी हुई " " " ५६२)

कुल प्रतियाँ २०००

लागत मूल्य राजसंस्करण प्रति संख्या ।≡॥)

लागत मूल्य साधारण संस्करण प्रति संख्या ।≡)

आदर्श पुस्तक-भण्डार

हमारे यहाँ दूसरे प्रकाशकों की उत्तम, उपयोगी और चुनी हुई हिन्दी पुस्तकें भी मिलती हैं। गन्दे और चरित्र-नाशक उपन्यास, नाटक आदि पुस्तकें हम नहीं बेचते। हिन्दी पुस्तकें मँगाने की जब आपको ज़रूरत हो तो इस मण्डल के नाम ही आर्डर भेजने के लिये हम आपसे अनुरोध करते हैं क्योंकि बाहरी पुस्तकें भेजने में यदि हमें व्यवस्था का खर्च निकाल कर कुछ भी बचत रही तो वह मण्डल की पुस्तकें और भी सस्ती करने में लगाई जायगी।

पता—सस्ता-साहित्य-मंडल, अजमेर।

विषय-सूची

द्वितीय खण्ड—राजतन्त्र

तामिल वेद

प्रस्तावना

पहला परिच्छेद

ईश्वर-स्तुति

१. 'अ' शब्द-लोक का मूल-स्थान है; ठीक इसी तरह आदिब्रह्म सब लोकों का मूल-स्रोत है।

२. यदि तुम सर्वज्ञ परमेश्वर के श्रीचरणों की पूजा नहीं करते हो, तो, तुम्हारी यह सारी विद्वत्ता किस काम की ?

३. जो मनुष्य, हृदय-कमल के अधिवासी श्री-भगवान् के पवित्र चरणों की शरण लेता है, वह संसार में बहुत समय तक जीवित रहेगा। *

४. धन्य है वह मनुष्य जो आदि-पुरुष के पादारविन्द में रत रहता है कि जो न किसी से प्रेम करता है, और न घृणा। उसे कभी कोई दुःख नहीं होता।

---

* ईश्वर का वर्णन करते समय त्रिवल्लुवर ने प्रायः ऐसे शब्दों का व्यवहार किया है जिन्हें साम्प्रदायिक नहीं कहा जा सकता। पर इस पद में वैष्णव भावना का सा आभास है।

५. देखो; जो मनुष्य प्रभु के गुणों का उत्साह पूर्वक गान करते हैं, उन्हें अपने भले-बुरे कर्मों का दुःखप्रद फल नहीं भोगना पड़ता।

६. जो लोग उस परम जितेन्द्रिय पुरुष के दिखाये धर्ममार्ग का अनुसरण करते हैं, वे दीर्घ जीवी होंगे।

७. केवल वही लोग दुःखों से बच सकते हैं, जो उस अद्वितीय पुरुष की शरण में आते हैं।

८. धन-वैभव और इन्द्रिय-सुख के तूफ़ानी समुद्र को वही पार कर सकते हैं कि जो उस धर्म-सिन्धु मुनीश्वर के चरणों में लीन रहते हैं।

९. जो मनुष्य अष्ट गुणों से अभिभूत परब्रह्म के चरण कमलों में सिर नहीं झुकाता, वह उस इन्द्रिय के समान है, जिस में अपने गुण को ग्रहण करने की शक्ति नहीं है। *

१०. जन्म-मरण के समुद्र को वही पार कर सकते हैं कि जो प्रभु के श्रीचरणों की शरण में आ जाते हैं, दूसरे लोग उसे तर ही नहीं सकते

---

* जैसे अन्धी आँख; बहरा कान।

दूसरा परिच्छेद

मेघ-स्तुति

१. समय पर न चूकने वाली वर्षा के द्वारा ही धरती अपने को धारण किये हुए है और इसी-लिए, मेह को लोग अमृत कहते हैं।

२. जितने भी स्वादिष्ट खाद्य पदार्थ हैं, वे सब वर्षा ही के द्वारा मनुष्य को प्राप्त होते हैं; और वह स्वयं भी भोजन का एक अंश है।

३. अगर पानी न बरसे तो सारी पृथ्वी पर अकाल का प्रकोप छा जाये; यद्यपि वह चारों तरफ़ समुद्र से घिरी हुई है।

४. यदि स्वर्ग के सोते सूख जाँय तो किसान लोग हल जोतना ही छोड़ देंगे।

५. वर्षा ही नष्ट करती है, और फिर यह वर्षा ही है जो नष्ट हुए लोगों को फिर से सर सब्ज़ करती है।

६. अगर आस्मान से पानी की बौछारें आना बन्द हो जायँ तो घास का उगना तक बन्द हो जायगा।

७. खुद शक्तिशाली समुद्र में ही कुत्सित वीभत्सता का दारुण प्रकोप जग उठे; यदि स्वर्गलोक उसके जल को पान करने और फिर उसे वापिस देने से इनकार कर दे।*

८. यदि स्वर्ग का जल सूख जाय, तो न तो देवताओं को प्रसन्न करने के लिये यज्ञ-याग होंगे और न संसार में भोज ही दिये जायँगे। †

९. यदि स्वर्ग से जल की धारायें आना बन्द हो जायें, तो फिर इस पृथ्वी भर में न कहीं दान रहे, न कहीं तप। ‡

१०. पानी के बिना संसार में कोई काम नहीं चल सकता, इसलिये सदाचार भी अन्ततः वर्षा ही पर आश्रित है।

---

* भावार्थ यह है कि समुद्र जो वर्षा का कारण है उसे भी वर्षा की आवश्यकता है। यदि वर्षा न हो तो समुद्र में गन्दगी पैदा हो जाये, जलचरों को कष्ट हो और मोती पैदा होने बन्द हो जायें।

† समस्त नित्य और नैमित्तिक कार्य बन्द हो जायंगे।

‡ तप सन्यासियों के लिये है और दान गृहस्थियों के लिये।

तीसरा परिच्छेद

संसार-त्यागी पुरुषों की महिमा

१. देखो, जिन लोगों ने सब-कुछ (इन्द्रिय-सुखों को) त्याग दिया है, और जो तापसिक जीवन व्यतीत करते हैं, धर्मशास्त्र उनकी महिमा को और सब बातों से अधिक उत्कृष्ट बताते हैं।

२. तुम तपस्वी लोगों की महिमा को नहीं नाप सकते। यह काम उतना ही मुश्किल है जितना सब मुर्दों की गणना करना।

३. देखो, जिन लोगों ने परलोक के साथ इहलोक का मुक़ाबिला करने के बाद इसे त्याग दिया है; उनकी ही महिमा से यह पृथ्वी जगमगा रही है।

४. देखो, जो पुरुष अपनी सुदृढ़ इच्छा-शक्ति के द्वारा अपनी पाँचों इन्द्रियों को इस तरह वश में रखता है, जिस तरह हाथी अंकुश द्वारा वशीभूत किया जाता है; वास्तव में वही स्वर्ग के खेतों में बोने योग्य बीज है।

५. जितेन्द्रिय पुरुष की शक्ति का साक्षी स्वयं देवराज इन्द्र है।*

---

* गौतम की स्त्री अहल्या और इन्द्र की कथा।

६. महान् पुरुष वही हैं, जो असम्भव * कार्यों का सम्पादन करते हैं और दुर्बल मनुष्य वे हैं, जिन से वह काम हो नहीं सकता।

७. देखो; जो मनुष्य शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध, इन पाँच इन्द्रिय-विषयों का यथोचित मूल्य समझता है, वह सारे संसार पर शासन करेगा। †

८. संसार भर के धर्म-ग्रन्थ सत्यवक्ता महात्माओं की महिमा की घोषणा करते हैं।

९. त्याग की चट्टान पर खड़े हुए महात्माओं के क्रोध को एक क्षण भर भी सह लेना असम्भव है।

१०. साधु-प्रकृति पुरुषों ही को ब्राह्मण कहना चाहिये। वही लोग सब प्राणियों पर दया रखते हैं। ‡

---

* इन्द्रिय-दमन।

† अर्थात् जो जानते हैं कि ये सब विषय क्षणिक सुख देने वाले हैं—मनुष्य को धर्म-मार्ग से बहकाते हैं और इस लिये उनके पंजे में नहीं फँसते हैं।

‡ मूल ग्रन्थ में ब्राह्मण वार्त्ता जिस शब्द का प्रयोग किया गया, उसका अर्थ ही यह है, सब पर दया करने वाला।

चौथा परिच्छेद

धर्म की महिमा का वर्णन

१. धर्म से मनुष्य को मोक्ष मिलता है, और उससे धर्म की प्राप्ति भी होती है; फिर भला, धर्म से बढ़ कर, लाभदायक वस्तु और क्या है ?

२. धर्म से बढ़ कर दूसरी और कोई नेकी नहीं, और उसे भुला देने से बढ़ कर दूसरी कोई बुराई भी नहीं है।

३. नेक काम करने में तुम लगातार लगे रहो, अपनी पूरी शक्ति और सब प्रकार से पूरे उत्साह के साथ उन्हें करते रहो।

४. अपना मन पवित्र रक्खो; धर्म का समस्त सार बस एक इसी उपदेश में समाया हुआ है। बाक़ी और सब बातें कुछ नहीं, केवल शब्दाडम्बर मात्र हैं।

५. ईर्ष्या, लालच, क्रोध और अप्रिय वचन इन सब से दूर रहो। धर्म-प्राप्ति का यही मार्ग है।

६. यह मत सोचो कि मैं धीरे-धीरे धर्म-मार्ग का अवलम्बन करूँगा। बल्कि अभी, बिना देर लगाये ही, नेक काम करना शुरू कर दो क्योंकि धर्म ही वह वस्तु है जो मौत के दिन, तुम्हारा साथ देने वाला, अमर मित्र होगा।

७. मुझ से यह मत पूछो कि धर्म से क्या लाभ है ? बस एक बार पालकी उठाने वाले कहारों की ओर देख लो और फिर उस आदमी को देखो, जो उसमें सवार है।

८. अगर तुम, एक भी दिन व्यर्थ नष्ट किये बिना, समस्त जीवन नेक काम करते हो तो तुम आगामी जन्मों का मार्ग बन्द किये देते हो।

९. केवल धर्म-जनित सुख ही वास्तविक सुख है।* बाकी सब तो पीड़ा और लज्जा मात्र हैं।

१०. जो काम धर्म-सङ्गत है, बस वही कार्य रूप में परिणित करने योग्य है। दूसरी जितनी बातें धर्म-विरुद्ध हैं, उनसे दूर रहना चाहिये।

---

* धन, वैभव इत्यादि दूसरी श्रेणी में हैं, यह इस मंत्र का दूसरा अर्थ हो सकता है।

प्रथम भाग

धर्म

प्रथम खण्ड

पाँचवाँ परिच्छेद

पारिवारिक जीवन

१. गृहस्थ आश्रम में रहने वाला मनुष्य अन्य तीनों आश्रमों का प्रमुख आश्रय है।

२. गृहस्थ अनाथों का नाथ, ग़रीबों का सहायक और निराश्रित मृतकों का मित्र है।

३. मृतकों का श्राद्ध करना, देवताओं को वलि देना, आतिथ्य-सत्कार करना, वन्धु-वान्धवों को सहायता पहुँचाना और आत्मोन्नति करना—ये गृहस्थ के पाँच कर्म हैं।

४. जो पुरुष वुराई करने से डरता है और भोजन करने से पहिले दूसरों को दान देता है; उसका वंश कभी निर्वीज नहीं होता।

५. जिस घर में स्नेह और प्रेम का निवास है, जिसमें धर्म का साम्राज्य है, वह सम्पूर्णतः, सन्तुष्ट रहता है—उसके सव उद्देश्य सफल होते हैं।

६. अगर मनुष्य गृहस्थ के धर्मों का उचित रूप से पालन करे, तब उसे दूसरे धर्मों का आश्रय लेने की क्या जरूरत है ?

७. मुमुक्षुओं में श्रेष्ठ वे लोग हैं, जो धर्मानुकूल गार्हस्थ्य जीवन व्यतीत करते हैं ।

८. देखो; गृहस्थ, जो दूसरे लोगों को कर्त्तव्य-पालन में सहायता देता है और स्वयं भी धार्मिक जीवन व्यतीत करता है, ऋषियों से भी अधिक पवित्र है ।

९. सदाचार और धर्म का विशेषतः विवाहित जीवन से सम्बन्ध है, और सुयश उसका आभूषण है ❀ ।

१०. जो गृहस्थ उसी तरह आचरण करता है कि जिस तरह उसे करना चाहिये, वह मनुष्यों में देवता समझा जायेगा ।

❀ दूसरा अर्थ—गार्हस्थ्य जीवन ही वास्तव में धार्मिक जीवन है; तापसिक जीवन भी अच्छा है, यदि कोई ऐसे काम न करें, जिनसे लोग घृणा करें ।

छठा परिच्छेद

सहधर्मिणी

१. वही नेक सहधर्मिणी है जिसमें सुपत्नीत्व के सब गुण वर्तमान हों और जो अपने पति के सामर्थ्य से अधिक व्यय नहीं करती * ।

२. यदि स्त्री स्त्रीत्व के गुणों से रहित हो तो और सब नियामतों (श्रेष्ठ वस्तुओं) के होते हुए भी गार्हस्थ्य जीवन व्यर्थ है ।

३. यदि किसी की स्त्री सुयोग्य है तो फिर ऐसी कौन सी चीज है जो उसके पास मौजूद नहीं ? और यदि स्त्री में योग्यता नहीं तो, फिर उसके पास है ही क्या चीज † ?

४. स्त्री अपने सतीत्व की शक्ति से सुरक्षित हो तो दुनिया में, उससे बढ़कर, शानदार चीज और क्या है ?

---

* साभार्या या गृहेदक्षा, साभार्या या प्रजावती ।
साभार्या या पति-प्राणा, साभार्या या पतिव्रता ॥

† यदि स्त्री सुयोग्य हो तो फ़िर ग़रीबी कैसी ? और यदि स्त्री में योग्यता नहीं तो फिर अमीरी कहाँ ?

५. देखो, जो स्त्री दूसरे देवताओं की पूजा नहीं करती किन्तु बिछौने से उठते ही अपने पतिदेव को पूजती है; जल से भरे हुए बादल भी उसका कहना मानते हैं ।

६. वही उत्तम सहधर्मिणी है जो अपने धर्म और अपने यश की रक्षा करती है और प्रेम-पूर्वक अपने पति की आराधना करती है ।

७. चार दिवारी के अन्दर पर्दे के साथ रहने से क्या लाभ ? स्त्री के धर्म का सर्वोत्तम रक्षक उसका इन्द्रिय-निग्रह है ।

८. * जो स्त्रियाँ अपने पति की आराधना करती हैं; स्वर्गलोक के देवता उनकी स्तुति करते हैं ।

९. जिस मनुष्य के घर से सुयश का विस्तार नहीं होता, वह मनुष्य अपने दुश्मनों के सामने गर्व से माथा ऊँचा करके सिंह-ध्वनि के साथ नहीं चल सकता ।

१०. सुसम्मानित पवित्र गृह सर्वश्रेष्ठ वर है और सुयोग्य सन्तति उसके महत्व की पराकाष्ठा ।

---

* दूसरा अर्थ—धन्य है वह स्त्री जिसने योग्य पुत्र को जन्म दिया है। देवताओं के लोक में उसका स्थान बहुत ऊँचा है ।

सातवाँ परिच्छेद

सन्तति

१. बुद्धिमान सन्तति पैदा होने से बढ़ कर दूसरी नियामत हम नहीं जानते ।

२. वह मनुष्य धन्य है जिसके बच्चों का आचरण निष्कलङ्क है—सात जन्म तक उसे कोई बुराई छू न सकेगी ।

३. सन्तति मनुष्य की सच्ची सम्पत्ति है; क्योंकि वह अपने सञ्चित पुण्य को अपने कर्मों द्वारा उसके अर्पण कर देती है ।

४. निस्सन्देह अमृत से भी अधिक स्वादिष्ट वह साधारण "रसा" है जिसे अपने बच्चे छोटे छोटे हाथ डाल कर घँघोलते हैं ।

५. बच्चों का स्पर्श शरीर का सुख है और कानों का सुख है उनकी बोली को सुनना ।

६. वंशी की ध्वनि प्यारी और सितार का स्वर मीठा है; ऐसा वे ही लोग कहते हैं जिन्होंने अपने बच्चों की तुतलाती हुई बोली नहीं सुनी है ।

७. पुत्र के प्रति पिता का कर्त्तव्य यही है कि वह उसे सभा में; प्रथम पंक्ति में, बैठने के योग्य बना दे।

८. बुद्धि में अपने बच्चों को अपने से बढ़ा हुआ पाने में सभी को सुख होता है।

९. माता की खुशी का कोई ठिकाना नहीं रहता जब उसके गर्भ से लड़का उत्पन्न होता है; मगर उससे भी कहीं ज्यादा खुशी उस वक्त होती है जब लोगों के मुँह से वह उसकी प्रशंसा सुनती है।

१०. पिता के प्रति पुत्र का कर्त्तव्य क्या है? यही कि संसार उसे देखकर उसके पिता से पूछे—किस तपस्या के बल से तुम्हें ऐसा सुपुत्र प्राप्त हुआ है।

आठवाँ परिच्छेद

प्रेम

१. ऐसा डेरा अथवा डंडा कहाँ है जो प्रेम के दरवाजे को वन्द कर सके ? प्रेमियों की आँखों के सुललित अश्रु-विन्दु अवश्य ही उसकी उपस्थिति की घोषणा किये बिना न रहेंगे ।

२. जो प्रेम नहीं करते, वे सिर्फ अपने ही लिये जीते हैं, मगर वे जो दूसरों को प्यार करते हैं, उनकी हड्डियें भी दूसरों के काम आती हैं ।

३. कहते हैं कि प्रेम का मज़ा चखने के ही लिये आत्मा एक वार फिर अस्थि-पिञ्जर में वन्द होने को राज़ी हुआ है ।

४. प्रेम से हृदय स्निग्ध हो उठता है और उस स्नेहशीलता से ही मित्रता रूपी वहुमूल्य रत्न पैदा होता है ।

५. लोगों का कहना है कि भाग्यशाली का सौभाग्य—इस लोक और परलोक दोनों स्थानों में—उसके निरन्तर प्रेम का ही पारितोषिक* है ।

---

* इहलोक और परलोक दोनों स्थानों में ।

६. वे मूर्ख हैं जो कहते हैं कि प्रेम केवल नेक आदमियों ही के लिये है; क्योंकि बुरों के विरुद्ध खड़े होने के लिये भी प्रेम ही मनुष्य का एक मात्र साथी है* ।

७. देखो; अस्थि-हीन कीड़े को सूर्य किस तरह जला देता है! ठीक इसी तरह नेकी उस मनुष्य को जला डालती है जो प्रेम नहीं करता ।

८. जो मनुष्य प्रेम नहीं करता वह तभी फूले-फलेगा कि जब मरुभूमि के सूखे हुए वृक्ष के ठुण्ठ में कोपलें निकलेंगी ।

९. बाह्य सौन्दर्य किस काम का जब कि प्रेम, जो आत्मा का भूषण है, हृदय में न हो ।

१०. प्रेम जीवन का प्राण है! जिसमें प्रेम नहीं वह केवल मांस से घिरी हुई हड्डियों का ढेर है । †

---

* 'जा घट प्रेम न संचरे, सो घट जान मसान' ।

† भले लोगों ही के साथ प्रेममय व्यवहार किया जाये, यह सिद्धान्त ठीक नहीं है, बुरे के साथ भी प्रेम का व्यवहार रखना चाहिये क्योंकि बुरे को भला और दुश्मन को दोस्त बनाने के लिये प्रेम से बढ़ कर दूसरी और कोई कीमिया नहीं है ।

नवाँ परिच्छेद

मेहमानदारी

१. बुद्धिमान लोग, इतनी मेहनत करके, गृहस्थी किस लिये बनाते हैं? अतिथि को भोजन देने और यात्री की सहायता करने के लिये।

२. जब घर में मेहमान हो तब चाहे अमृत ही क्यों न हो, अकेले नहीं पीना चाहिये।

३. घर आये हुए अतिथि का आदर-सत्कार करने में जो कभी नहीं चूकता, उस पर कभी कोई आपत्ति नहीं आती।

४. देखो; जो मनुष्य योग्य अतिथि का प्रसन्नता-पूर्वक स्वागत करता है, उसके घर में निवास करने से लक्ष्मी को आह्लाद होता है!

५. देखो; जो आदमी पहले अपने मेहमान को खिलाता और उसके बाद ही, जो कुछ बचता है, खुद खाता है; क्या उसके खेत को बोने की भी जरूरत होगी?

६. देखो; जो आदमी बाहर जाने वाले अतिथि की सेवा कर चुका है और आने वाले अतिथि की प्रतीक्षा करता है; ऐसा आदमी देवताओं का सुप्रिय अतिथि है।

७. हम किसी अतिथि-सेवा के महात्म्य का वर्णन नहीं कर सकते—उसमें इतने गुण हैं। अतिथि-यज्ञ का महत्व तो अथिति की योग्यता पर निर्भर है।

८. देखो; जो मनुष्य अतिथि-यज्ञ नहीं करता, वह एक रोज कहेगा—मैंने मेहनत करके एक बड़ा भारी खजाना जमा किया मगर हाय! वह सब बेकार हुआ क्योंकि वहाँ मुझे आराम पहुँचाने वाला कोई नहीं है।

९. धन और वैभव के होते हुए भी जो यात्री का आदर-सत्कार नहीं करता वह मनुष्य नितान्त दरिद्र है; यह बात केवल मूर्खों में ही होती है।

१०. अनीचा का पुष्प सूँघने से मुर्झा जाता है, मगर अतिथि का दिल तोड़ने के लिये एक निगाह ही काफ़ी है।

दसवाँ परिच्छेद

मृदु-भाषण

१. सत्पुरुषों की वाणी ही वास्तव में सुस्निग्ध होती है क्योंकि वह दयार्द्र, कोमल और बनावट से खाली होती है।

२. औदार्यमय दान से भी बढ़ कर, सुन्दर गुण, वाणी की मधुरता और दृष्टि की स्निग्धता तथा स्नेहार्द्रता में है।

३. हृदय से निकली हुई मधुर वाणी और ममतामयी स्निग्ध दृष्टि के अन्दर ही धर्म का निवासस्थान है।

४. देखो; जो मनुष्य सदा ऐसी वाणी बोलता है कि जो सब के हृदयों को आह्लादित कर दे, उसके पास दुःखों की अभिवृद्धि करने वाली दरिद्रता कभी न आयेगी।

५. नम्रता और स्नेहार्द्र वक्तृता, बस, केवल यही मनुष्य के आभूषण हैं, और कोई नहीं।

६. यदि तुम्हारे विचार शुद्ध और पवित्र हैं और तुम्हारी वाणी में सहृदयता है तो तुम्हारी पाप-वृत्ति का क्षय हो जायगा और धर्मशीलता की अभिवृद्धि होगी।

७. सेवा-भाव को प्रदर्शित करने वाला और विनम्र वचन मित्र बनाता है और बहुत से लाभ पहुँचाता है।

८. वे शब्द जो कि सहृदयता से पूर्ण और क्षुद्रता से रहित होते हैं; इहलोक और परलोक दोनों ही जगह लाभ पहुँचाते हैं।

९. श्रुति-प्रिय शब्दों के अन्दर जो मधुरता है, उसका अनुभव कर लेने के बाद भी मनुष्य क्रूर शब्दों का व्यवहार करना क्यों नहीं छोड़ता ?

१०. मीठे शब्दों के रहते हुए भी जो मनुष्य कड़वे शब्दों का प्रयोग करता है वह मानो पके फल को छोड़कर कच्चा फल खाना पसन्द करता है।*

---

* श्रीयुत् वी० वी० एस अय्यर ने इस पद का अर्थ इस प्रकार किया है:—देखो जो आदमी मीठे शब्दों से काम चल जाने पर भी कठोर शब्दों का प्रयोग करता है, वह पक्के फल की अपेक्षा कच्चा फल पसंद करता है।
कहावत है:—
'जो गुड़ दीन्हें ही मरे, क्यों विष दीजे ताहि ?'

ग्यारहवाँ परिच्छेद

कृतज्ञता

१. एहसान करने के विचार से रहित होकर जो दया दिखायी जाती है; स्वर्ग और मर्त्य दोनों मिल कर भी उसका बदला नहीं चुका सकते।

२. ज़रूरत के वक्त जो मेहरबानी की जाती है वह देखने में छोटी भले ही हो; मगर वह तमाम दुनिया से ज्यादा वज़नदार है।

३. बदले के ख्याल को छोड़ कर जो भलाई की जाती है, वह समुद्र से भी अधिक बलवती है।

४. किसी से प्राप्त किया हुआ लाभ, राई की तरह छोटा ही क्यों न हो; किन्तु समझदार आदमी की दृष्टि में वह ताड़ के वृक्ष के बराबर है।

५. कृतज्ञता की सीमा, किये हुये उपकार पर अवलम्बित नहीं है; उसका मूल्य उपकृत व्यक्ति की शराफ़त पर निर्भर है।

६. महात्माओं की मित्रता की अवहेलना मत करो और उन लोगों का त्याग मत करो, जिन्होंने मुसीबत के वक्त तुम्हारी सहायता की।

७. जो किसी को कष्ट से उबारता है, जन्म जन्मान्तर तक उसका नाम कृतज्ञता के साथ लिया जायेगा।

८. उपकार को भूल जाना नीचता है; लेकिन यदि कोई भलाई के बदले बुराई करे तो उसको फौरन ही भुला देना शराफ़त की निशानी है।*

९. हानि पहुँचाने वाले की यदि कोई मेहरबानी याद आ जाती है तो महा भयङ्कर व्यथा पहुँचाने वाली चोट, उसी दम भूल जाती है।

१०. और सब दोषों से कलङ्कित मनुष्यों का तो उद्धार हो सकता है; किन्तु अभागे अकृतज्ञ मनुष्य का कभी उद्धार न होगा।

---

* अपकारिषु यः साधुः, सः साधुः सद्भिरुच्यते।

बारहवाँ परिच्छेद

ईमान्दारी तथा न्याय-निष्ठा

१. . और कुछ नहीं; नेकी का सार इसी में कि मनुष्य निष्पक्ष हो कर, ईमान्दारी के साथ, दूसरे का हक़ अदा कर दे फिर चाहे वह दोस्त हो अथवा दुश्मन।

२. न्याय-निष्ठ की सम्पत्ति कभी कम नहीं होती। वह दूर तक, पीढ़ी दर पीढ़ी चली जाती है।

३. नेकी को छोड़ कर जो धन मिलता है, उसे कभी मत छुओ; भले ही उससे लाभ के अतिरिक्त और किसी बात की सम्भावना न हो।

४. नेक और बद का पता उनकी सन्तान से चलता है।

५. भलाई-बुराई तो सभी को पेश आती है, मगर एक न्यायनिष्ठ दिल बुद्धिमानों के गर्व की चीज़ है।*

---

* निन्दन्तु नीति निपुणा यदि वा स्तुवन्तु। लक्ष्मीः समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम्॥ अद्यैव वा मरण मस्तु युगान्तरे वा। न्यायात्पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः॥ भर्तृहरि नी. श. ८४.

६. जब तुम्हारा मन नेकी को छोड़ कर बदी की ओर चलायमान होने लगे तो समझ लो तुम्हारा सर्वनाश निकट ही है।

७. संसार न्यायनिष्ठ और नेक आदमी की ग़रीबी को हेय दृष्टि से नहीं देखता है।

८. उस बराबर तुली हुई लकड़ी को देखो, वह सीधी है और इसलिये ठीक बराबर तुली हुई है; बुद्धिमानों का गौरव इसी में है। वे इसकी तरह बनें—न इधर को झुकें, और न उधर को।

९. जो मनुष्य अपने मन में भी नेकी से नहीं डिगता है, उसके रास्तबाज़ होठों से निकली हुई बात नित्य सत्य है।

१०. उस दुनियादार आदमी को देखो कि जो दूसरे के कामों को अपने खास कामों की तरह देखता-भालता है; उसके काम-काज में अवश्य उन्नति होगी।

तेरहवाँ परिच्छेद

आत्म-संयम

१. आत्म-संयम से स्वर्ग प्राप्त होता है किन्तु असंयत इन्द्रिय-लिप्सा रौरव नर्क के लिये खुली शाह राह है।

२. आत्म-संयम की, अपने खजाने की तरह, रक्षा करो; उससे बढ़ कर, इस दुनिया में, जीवन के पास और कोई धन नहीं है।

३. जो पुरुष ठीक तरह से समझ-बूझ कर अपनी इच्छाओं का दमन करता है; मेधा और अन्य दूसरी नियामतें उसे मिलेंगी।

४. जिसने अपनी इच्छा को जीत लिया है और जो अपने कर्त्तव्य से विचलित नहीं होता, उसकी आकृति पहाड़ से भी बढ़कर रोबोदाब वाली होती है।

५. नम्रता सभी को सोहती है, मगर वह अपनी पूरी शान के साथ अमीरों में ही चमकती है।

६. जो मनुष्य अपनी इन्द्रियों को उसी तरह अपने में खींचकर रखता है जिस तरह कछुआ अपने हाथ-पाँव को खींचकर भीतर छुपा लेता

है; उसने अपने समस्त आगामी जन्मों के लिये खजाना जमा कर रक्खा है।*

७. और किसी को चाहे तुम मत रोको मगर अपनी .ज़ुबान को लगाम दो; क्योंकि बे लगाम की .ज़ुबान बहुत दुःख देती है।

८. अगर तुम्हारे एक शब्द से भी किसी को पीड़ा पहुँचती है तो तुम अपनी सब नेकी नष्ट हुई समझो।

९. आग का जला हुआ तो समय पाकर अच्छा हो जाता है, मगर .ज़ुबान का लगा हुआ ज़ख्म सदा हरा बना रहता है।

१०. उस मनुष्य को देखो जिसने विद्या और बुद्धि प्राप्त कर ली है। जिसका मन शान्त और पूर्णतः वश में है—धार्मिकता और नेकी उसका दर्शन करने के लिये उसके घर में आती है।

---

* तिरुवल्लुवर के भाव में और गीता के इस निम्न-लिखित श्लोक में कितना सामञ्जस्य है! इन्द्रिय-निग्रह को दोनों कछुवे के अङ्ग समेटने से उपमा देते हैं और दोनों के बताये हुए फल भी लगभग एक से हैं:—

यदा संहरते चायं कूर्मोऽङ्गानीव सर्वशः।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता॥

गीता अ. २ श्लो. २८

चौदहवाँ परिच्छेद

सदाचार

१. जिस मनुष्य का आचरण पवित्र है, सभी उसकी इज़्ज़त करते हैं, इसलिये सदाचार को प्राणों से भी बढ़ कर समझना चाहिये।*

२. अपने आचरण की खूब देख-रेख रक्खो; क्योंकि तुम जहाँ चाहो खोजो, सदाचार से बढ़ कर पक्का दोस्त कहीं नहीं पा सकते।

३. सदाचार सम्मानित परिवार को प्रगट करता है। मगर दुराचार मनुष्य को कमीनों में जा बिठाता है।

४. वेद भी अगर विस्मृत हो जायँ तो फिर याद कर लिये जा सकते हैं; मगर सदाचार से यदि एकबार भी मनुष्य स्खलित हो गया तो सदा के लिये अपने स्थान से भ्रष्ट हो जाता है।

५. सुख-समृद्धि ईर्ष्या करने वालों के लिये नहीं है; ठीक इसी तरह गौरव दुराचारियों के लिये नहीं है।

---

* वरं विन्ध्याटव्यामनशनतृषार्तस्य मरणम्।
न शीलाद् विभ्रंशो भवतु कुलजस्यश्रुतवतः॥

६. दृढ़-प्रतिज्ञ सदाचार से स्खलित नहीं होते क्योंकि वे जानते हैं कि इस प्रकार के स्खलन से कितनी आपत्तियाँ आती हैं ।

७. मनुष्य-समाज में सदाचारी पुरुष का सम्मान होता है; लेकिन जो लोग सन्मार्ग से बहक जाते हैं, बदनामी और बेइज्जती ही उन्हें नसीब होती है ।

८. सदाचार † सुख-सम्पत्ति का बीज बोता है; मगर दुष्ट-प्रवृत्ति असीम आपत्तियों की जननी है ।

९. वाहियात और गन्दे शब्द, भूल कर भी, शरीफ आदमी की ज़ुबान से नहीं निकलेंगे ।

१०. मूर्खों को और जो चाहो तुम सिखा सकते हो, मगर सदा सन्मार्ग पर चलना वे कभी नहीं सीख सकते ।

गिरिते गिरि परिबो भलो, भलो पकरिबो नाग ।
अग्नि माँहि जरिबो भलो, बुरो शील को त्याग ॥

कस्यचित्कवि ।

† जहाँ सुमति तहँ सम्पति नाना ।
जहाँ कुमति तहँ विपति-निधाना ॥

—तुलसीदास ।

पन्द्रहवाँ परिच्छेद

पराई स्त्री की इच्छा न करना

१. जिन लोगों की नजर धन और धर्म पर रहती है, वे परायी स्त्री को चाहने की मूर्खता नहीं करते।

२. जो लोग धर्म से गिर गये हैं उनमें उस मनुष्य से बढ़कर मूर्ख और कोई नहीं है कि जो पड़ोसी की ड्योढ़ी पर खड़ा होता है।

३. निस्सन्देह वे लोग मौत के मुँह में हैं कि जो सन्देह न करने वाले मित्र के घर पर हमला करते हैं।

४. मनुष्य कितना ही बड़ा क्यों न हो; मगर उसका बड़प्पन किस काम का जब कि वह व्यभिचार से पैदा हुई लज्जा का जरा भी खयाल न करके पर-स्त्री गमन करता है।*

---

* पर नारी पैनी छुरी, मत कोई लावो अङ्ग।
रावण के दश सिर गये, पर नारी के सङ्ग॥

—कबीर

५. जो पुरुष अपने पड़ोसी की स्त्री को गले लगाता है इसलिये कि वह उस तक पहुँच सकता है; उसका नाम सदा के लिये कलङ्कित हुआ समझो।

६. व्यभिचारी को इन चार चीजों से कभी छुटकारा नहीं मिलता—घृणा, पाप, भ्रम और कलङ्क।

७. सद्गृहस्थ वही है कि जो अपने पड़ोसी की स्त्री के सौन्दर्य और लावण्य की परवा नहीं करता।

८. शाबास है उसकी मर्दानगी को कि जो पराई स्त्री पर नज़र नहीं डालता! वह केवल नेक और धर्मात्मा ही नहीं, सन्त है।

९. पृथ्वी पर की सब नियामतों का हक़दार कौन है? वही कि जो परायी स्त्री को बाहु-पाश में नहीं लेता।

१०. तुम कोई भी अपराध और दूसरा कैसा भी पाप क्यों न करो मगर तुम्हारे हक में यही बेहतर है कि तुम अपने पड़ोसी की स्त्री की इच्छा न करो।

सोलहवाँ परिच्छेद

क्षमा

१. धरती* उन लोगों को भी आश्रय देती है कि जो उसे खोदते हैं—इसी तरह तुम भी उन लोगों की बातें सहन करो जो तुम्हें सताते हैं; क्योंकि बड़प्पन इसी में है।

२. दूसरे लोग तुम्हें जो हानि पहुँचायें उसके लिये तुम सदा उन्हें क्षमा कर दो; और अगर तुम उसे भुला दे सको तो यह और भी अच्छा है।

३. अतिथि-सत्कार से इनकार करना ही सब से अधिक ग़रीबी की बात है और मूर्खों की बेहूदगी को सहन करना ही सब से बड़ी बहादुरी है।

४. यदि तुम सदा ही गौरवमय बनना चाहते हो तो सब के प्रति क्षमामय व्यवहार करो।

५. जो लोग बुराई का बदला लेते हैं, बुद्धिमान उन की इज़्ज़त नहीं करते; मगर जो अपने

---

* एक हिन्दी कवि ने सन्तों की उपमा फलदार वृक्षों से देते हुए कहा है—

'ये इतते पाहन हने, वे उतते फल देत'

दुश्मनों को माफ़ कर देते हैं वह स्वर्ण की तरह बहुमूल्य समझे जाते हैं।

६. बदला लेने की खुशी तो सिर्फ एक ही दिन रहती है; मगर जो पुरुष क्षमा कर देता है उसका गौरव सदा स्थिर रहता है।

७. नुकसान चाहे कितना ही बड़ा क्यों न उठाना पड़ा हो; मगर खूबी इसी में है कि मनुष्य उसे मन में न लाये और बदला लेने के विचार से दूर रहे।

८. घमण्ड में चूर हो कर जिन्होंने तुम्हें हानि पहुँचाई है, उन्हें अपनी भलमन्साहत से विजय कर लो।

९. *संसार-त्यागी पुरुषों से भी बढ़ कर सन्त वह है जो अपनी निन्दा करने वालों की कटु वाणी को सहन कर लेता है।

१०. भूखे रह कर तपश्चर्या करने वाले निःसन्देह महान् हैं, मगर उनका दर्जा उन लोगों के बाद ही है जो अपनी निन्दा करने वालों को क्षमा कर देते हैं।

---

* कबीर तो यहाँ तक कह गये हैं—

निन्दक नियरे राखिये, आँगन कुटी छवाय
बिन पानी साबुन बिना, निर्मल करे सुभाय

सत्रहवाँ परिच्छेद

ईर्ष्या न करना

१. ईर्ष्या के विचारों को अपने मन में न आने दो; क्योंकि ईर्ष्या से रहित होना धर्माचरण का एक अङ्ग है।

२. सब प्रकार की ईर्ष्या से रहित स्वभाव के समान दूसरी और कोई बड़ी नियामत नहीं है।

३. जो मनुष्य धन या धर्म की परवाह नहीं करता वही अपने पड़ोसी की समृद्धि पर डाह करता है।

४. बुद्धिमान लोग ईर्ष्या की वजह से दूसरों को हानि नहीं पहुँचाते क्योंकि उससे जो बुराइयाँ पैदा होती हैं, उन्हें वे जानते हैं।

५. ईर्ष्या करने वाले के लिये ईर्ष्या ही काफ़ी बला है; क्योंकि उसके दुश्मन उसे छोड़ भी दें तो भी उसकी ईर्ष्या ही उसका सर्वनाश कर देगी।

६. जो मनुष्य दूसरों को देते हुए नहीं देख सकता उसका कुटुम्ब, रोटी और कपड़ों तक के लिये मारा २ फिरेगा और नष्ट हो जायेगा।

७. लक्ष्मी ईर्ष्या करने वाले के पास नहीं रह सकती, वह उसको अपनी बड़ी बहिन * के हवाले कर के चली जायगी।

८. दुष्टा ईर्ष्या दरिद्रता दानवी को बुलाती है और मनुष्य को नरक के द्वार तक ले जाती है।

९. ईर्ष्या करने वालों की समृद्धि और उदार चेता पुरुषों की कङ्गाली ये दोनों ही एक समान आश्चर्यजनक हैं।

१०. न तो ईर्ष्या से कभी कोई फल फूला और न उदारचेता पुरुष उस अवस्था से कभी वञ्चित ही हुआ।

---

* दरिद्रता।

अठारहवाँ परिच्छेद

निर्लोभता

१. जो पुरुष सन्मार्ग को छोड़ कर दूसरे की सम्पत्ति को लेना चाहता है उसकी दुष्टता बढ़ती जायगी और उसका परिवार क्षीण हो जायगा।

२. जो पुरुष बुराई से विमुख रहते हैं वे लोभ नहीं करते और न दुष्कर्मों की ओर ही प्रवृत्त होते हैं।

३. देखो; जो मनुष्य अन्य प्रकार के सुखों को चाहते हैं, वे छोटे-मोटे सुखों का लोभ नहीं करते और न कोई बुरा काम ही करते हैं।

४. जिन्होंने अपनी इन्द्रियों को वश में कर लिया है और जिनके विचार उदार हैं, वे यह कह कर दूसरों की चीज़ों की कामना नहीं करते—ओहो, हमें इसकी जरूरत है।

५. वह बुद्धिमान और समझदार मन किस काम का जो लालच में फँस जाता है और वाहियात काम करने को तय्यार होता है।

६. वे लोग भी जो सुयश के भूखे हैं और सीधी राह पर चलते हैं, नष्ट हो जायँगे, यदि धन के फेर में पड़ कर कोई कुचक्र रचेंगे ।

७. लालच द्वारा एकत्रित किये हुए धन की कामना मत करो क्योंकि भोगने के समय उस का फल तीखा होगा ।

८. यदि तुम चाहते हो कि तुम्हारी सम्पत्ति कम न हो तो तुम अपने पड़ोसी के धन-वैभव को ग्रसने की कामना मत करो ।

९. जो बुद्धिमान मनुष्य न्याय की बात को समझता है और दूसरे की चीज़ों को लेना नहीं चाहता; लक्ष्मी उसकी श्रेष्ठता को जानती है और उसे ढूंढती हुई उसके घर तक जाती है ।

१०. दूरदर्शिता-हीन लालच नाश का कारण होता है; मगर महत्व, जो कहता है—मैं नहीं चाहता, सर्व-विजयी होता है ।

उन्नीसवाँ परिच्छेद

चुग़ली न खाना

१. जो मनुष्य सदा बुराई ही करता है और नेकी का कभी नाम भी नहीं लेता, उसको भी प्रसन्नता होती है जब कोई कहता है—देखो! यह आदमी किसी की चुग़ली नहीं खाता।

२. नेकी से विमुख हो जाना और बदी करना निःसन्देह बुरा है मगर सामने हँस कर बोलना और पीठ पीछे निन्दा करना उस से भी बुरा है।

३. झूठ और निन्दा के द्वारा जीवन व्यतीत करने से तो फ़ौरन ही मर जाना बेहतर है क्योंकि इस तरह मर जाने से नेकी का फल मिलता है।

४ पीठ पीछे किसी की निन्दा न करो, चाहे उसने तुम्हारे मुँह पर ही तुम्हें गाली दी हो।

५. मुंह से कोई कितनी ही नेकी की बातें करें मगर उसकी चुग़लखोर ज़ुबान उसके हृदय की नीचता को प्रगट कर ही देती है।

६. अगर तुम दूसरे की निन्दा करोगे तो वह तुम्हारे दोषों को खोज कर उनमें से बुरे से बुरे दोषों को प्रगट कर देगा।

७. जो मधुर वचन बोलना और मित्रता करना नहीं जानते वे फूट का बीज बोते हैं और मित्रों को एक दूसरे से जुदा कर देते हैं।

८. जो लोग अपने मित्रों के दोषों की खुले आम चर्चा करते हैं वे अपने दुश्मनों के दोषों को भला किस तरह छोड़ेंगे ?

९. पृथ्वी निन्दा करने वाले के पदाघात को, सब्र के साथ, अपनी छाती पर किस तरह सहन करती है ? क्या वही अपना पिण्ड छुड़ाने की ग़रज़ से धर्म की ओर बार-बार ताकती है ?

१०. यदि मनुष्य अपने दोषों की विवेचना उसी तरह करे जिस तरह वह अपने दुश्मनों के दोषों की करता है, तो क्या बुराई कभी उसे छू सकती है ?

बीसवाँ परिच्छेद

पाप कर्मों से भय

१. दुष्ट लोग उस मूर्खता से नहीं डरते जिसे पाप कहते हैं, मगर लायक लोग उससे सदा दूर भागते हैं।

२. बुराई से बुराई पैदा होती है, इसलिये आग से भी बढ़कर बुराई से डरना चाहिये।

३. कहते हैं, सब से बड़ी बुद्धिमानी यही है कि दुश्मन को भी नुक्सान पहुँचाने से परहेज़ किया जाय।

४. भूल से भी दूसरे के सर्वनाश का विचार न करो क्योंकि न्याय उसके विनाश की युक्ति सोचता है जो दूसरे के साथ बुराई करना चाहता है।

५. मैं ग़रीब हूँ; ऐसा कह कर किसी को पाप-कर्म में लिप्त न होना चाहिये क्योंकि ऐसा करने से वह और भी कङ्गाल हो जायेगा।

६. जो मनुष्य आपत्तियों द्वारा दुःखित होना नहीं चाहता, उसे दूसरों को हानि पहुँचाने से बचना चाहिये।

७. दूसरे सब तरह के दुश्मनों से बचाव हो सकता है मगर पाप कर्मों का कभी विनाश नहीं होता—वे पापी का पीछा करके उसको नष्ट किये बिना नहीं छोड़ते।

८. जिस तरह छाया मनुष्य को कभी नहीं छोड़ती, बल्कि जहाँ २ वह जाता है उसके पीछे २ लगी रहती है; बस, ठीक इसी तरह, पाप कर्म पापी का पीछा करते हैं और अन्त में उसका सर्वनाश कर डालते हैं।

९. यदि किसी को अपने से प्रेम है तो उसे पाप की ओर जरा भी न झुकना चाहिये।

१०. उसे आपत्तियों से सदा सुरक्षित समझो जो अनुचित कर्म करने के लिये सन्मार्ग को नहीं छोड़ता।

इक्कीसवाँ परिच्छेद

परोपकार

१. महान् पुरुष जो उपकार करते हैं, उसका बदला नहीं चाहते। भला, संसार जल बरसाने वाले बादलों का बदला किस तरह चुका सकता है?

२. योग्य पुरुष अपने हाथों मेहनत करके जो धन जमा करते हैं, वह सब दूसरों ही के लिये होता है।

३. हार्दिक उपकार से बढ़कर न तो कोई चीज़ इस संसार में मिल सकती है और न स्वर्ग में।

४. जिसे उचित-अनुचित का विचार है, वही वास्तव में जीवित है पर, जो योग्य-अयोग्य का खयाल नहीं रखता उसकी गिनती मुर्दों में की जायगी।

५. लबालब भरे हुए गाँव के तालाब को देखो; जो मनुष्य सृष्टि से प्रेम करता है उसकी सम्पत्ति उसी तालाब के समान है।

६. दिलदार आदमी का वैभव गाँव के बीचों बीच उगे हुए और फलों से लदे हुए वृक्ष के समान है।

७. उदार मनुष्य के हाथ का धन उस वृक्ष के समान है जो औषधियों का सामान देता है और सदा हरा बना रहता है।

८. देखो, जिन लोगों को उचित और योग्य बातों का ज्ञान है, वे बुरे दिन आने पर भी दूसरों का उपकार करने से नहीं चूकते।

९. परोपकारी पुरुष उसी समय अपने को ग़रीब समझता है जब कि वह सहायता माँगने वालों की इच्छा पूर्ण करने में असमर्थ होता है।

१०. यदि * परोपकार करने के फल स्वरूप सर्व नाश उपस्थित हो, तो गुलामी में फँसने के लिये आत्म-विक्रय करके भी उसको सम्पादन करना उचित है।

---

* परोपकाराय फलन्ति वृक्षाः।
परोपकाराय वहन्ति नद्यः॥
परोपकाराय दुहन्ति गावः।
परोपकारार्थमिदं शरीरम्॥

बाईसवाँ परिच्छेद

दान

१. ग़रीबों को देना ही दान है; और सब तरह का देना उधार देने के समान है।

२. दान लेना बुरा है चाहे उस से स्वर्ग ही क्यों न मिलता हो। और दान देने वाले के लिये चाहे स्वर्ग का द्वार ही क्यों न बन्द हो जाये, फिर भी दान देना धर्म है।

३. हमारे पास नहीं है—ऐसा कहे बिना दान देने वाला पुरुष ही केवल कुलीन होता है।

४. याचक के ओठों पर सन्तोष-जनित हँसी की रेखा देखे बिना दानी का दिल खुश नहीं होता।

५. आत्म-जयी की विजयों में से सर्वश्रेष्ठ जय है भूख को जय करना। मगर उसकी विजय से भी बढ़ कर उस मनुष्य की विजय है जो भूख को शान्त करता है।

६. ग़रीबों के पेट की ज्वाला को शान्त करना यही तरीक़ा है जिससे अमीरों को खास अपने लिये धन जमा कर रखना चाहिये।

७. जो मनुष्य अपनी रोटी दूसरों के साथ बाँट कर खाता है उसको भूख की भयानक बिमारी कभी स्पर्श नहीं करती।

८. वे संग-दिल लोग जो जमा कर-कर के अपने धन की बरबादी करते हैं, क्या उन्होंने कभी दूसरों को दान करने की खुशी का मज़ा नहीं चक्खा है ?

९. भीख माँगने से भी बढ़ कर अप्रिय उस कंजूस का जमा किया हुआ खाना है जो अकेला बैठ कर खाता है।

१०. मौत से बढ़ कर कड़वी चीज़ और कोई नहीं है; मगर मौत भी उस वक्त मीठी लगती है जब किसी को दान करने की सामर्थ्य नहीं रहती।

तेईसवाँ परिच्छेद

कीर्ति

१. गरीबों को दान दो और कीर्ति कमाओ; मनुष्य के लिये इस से बढ़ कर लाभ और किसी में नहीं है।

२. प्रशंसा करने वाले की जबान पर सदा उन लोगों का नाम रहता है कि जो ग़रीबों को दान देते हैं।

३. दुनियाँ में और सब चीजें तो नष्ट हो जाती हैं; मगर अतुल कीर्ति सदा बनी रहती है।

४. देखो; जिस मनुष्य ने दिगन्तव्यापी स्थायी कीर्ति पायी है, स्वर्ग में देवता लोग उसे साधु-सन्तों से भी बढ़ कर मानते हैं

५. विनाश जिससे कीर्ति में वृद्धि हो और मौत जिस से अलौकिक यश की प्राप्ति हो, ये दोनों महान् आत्माओं ही के मार्ग में आते हैं।

६. यदि मनुष्यों को संसार में अवश्य ही पैदा होना है तो उनको चाहिये कि वे सुयश उपार्जन करें। जो ऐसा नहीं करते उनके लिये तो

यही अच्छा था कि वे विल्कुल पैदा ही न हुए होते ।

७. जो लोग दोषों से सर्वथा रहित नहीं हैं वे खुद अपने पर तो नहीं बिगड़ते; फिर वे अपनी निन्दा करने वाले से क्यों नाराज़ होते हैं ?

८. निःसन्देह यह सब मनुष्यों के लिये बेइज्ज़ती की बात है, अगर वे उस स्मृति का सम्पादन नहीं करते कि जिसे कीर्ति कहते हैं ।

९. बदनाम लोगों के बोझ से दबे हुए देश को देखो; उसकी समृद्धि, भूतकाल में चाहे कितनी ही बढ़ी-चढ़ी क्यों न रही हो, धीरे-धीरे नष्ट हो जायगी ।

१०. वही लोग जीते हैं जो निष्कलङ्क जीवन व्यतीत करते हैं और जिनका जीवन कीर्ति-विहीन है, वास्तव में वे ही मुर्दे हैं ।

द्वितीय खण्ड
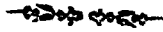
तपस्वी का जीवन

चौबीसवाँ परिच्छेद

दया

१. दया से लबालब भरा हुआ दिल ही सब से बड़ी दौलत है क्योंकि दुनियावी दौलत तो नीच मनुष्यों के पास भी देखी जाती है।

२. ठीक पद्धति से सोच-विचार कर हृदय में दया धारण करो और अगर तुम सब धर्मों से इस बारे में पूछ कर देखोगे तो तुम्हें मालूम होगा कि दया ही एक मात्र मुक्ति का साधन है।

३. जिन लोगों का हृदय दया से अभिभूत है वे उस अन्धकारमय अप्रिय लोक में प्रवेश नहीं करते।

४. जो मनुष्य सब जीवों पर मेहरबानी और दया दिखलाता है, उसे उन पाप-परिणामों को भोगना नहीं पड़ता जिन्हें देख कर ही आत्मा काँप उठती है।

५. क्लेश दयालु पुरुष के लिये नहीं है; भरी-पूरी वायु-वेष्टित पृथ्वी इस बात की साक्षी है।

६. अफ़सोस है उस आदमी पर जिसने दया-धर्म को त्याग दिया और पाप कर्म करने लगा है; धर्म का त्याग करने के कारण यद्यपि पिछले जन्मों में उसने भयङ्कर दुःख उठाये हैं मगर उसने जो नसीहत ली थी, उसे भुला दिया है।

७. जिस तरह इहलोक धन-वैभव से शून्य पुरुष के लिये नहीं है; ठीक इसी तरह परलोक उन लोगों के लिये नहीं, जिन के पास दया का अभाव है।

८. ऐहिक वैभव से शून्य ग़रीब लोग तो किसी दिन वृद्धिशाली हो भी सकते हैं, मगर वे, जो दया-ममता से रहित हैं, सचमुच ही ग़रीब-कङ्गाल हैं और उनके दिन कभी नहीं फिरते।

९. विकार-ग्रस्त मनुष्य के लिये सत्य को पा लेना जितना सहज है, कठोर दिलवाले पुरुष के लिये नेकी के काम करना भी उतना ही आसान है।

१०. जब तुम किसी दुर्बल को सताने के लिये उद्यत हो तो सोचो कि अपने से बलवान मनुष्य के आगे भय से जब तुम काँपोगे तब तुम्हें कैसा लगेगा।

पचीसवाँ परिच्छेद

निरामिष

१. भला उसके दिल में तरस कैसे आयेगा जो अपना मांस बढ़ाने की खातिर दूसरों का मांस खाता है।

२. फ़िज़ूल खर्च करने वाले के पास जैसे धन नहीं ठहरता; ठीक इसी तरह मांस खाने वाले के हृदय में दया नहीं रहती।

३. जो मनुष्य माँस चखता है उसका दिल हथियार-बन्द आदमी के दिल की तरह नेकी की ओर राग़िब नहीं होता।

४. जीवों की हत्या करना निःसन्देह क्रूरता है मगर उनका मांस खाना तो एकदम पाप है।*

५. माँस न खाने ही में जीवन है; अगर तुम खाओगे तो नरक का द्वार तुम्हें बाहर निकल जाने देने के लिये अपना मुँह नहीं खोलेगा।

---

* अहिंसा ही दया है और हिंसा करना ही निर्दयता मगर माँस खाना एकदम पाप है।

६. अगर दुनियाँ खाने के लिये माँस की कामना न करे तो उसे बेचने वाला कोई आदमी ही न रहेगा। *

७. अगर मनुष्य दूसरे प्राणियों की पीड़ा और यन्त्रणा को एक बार समझ सके तो फिर वह कभी माँस खाने की इच्छा न करे।

८. जो लोग माया और मूढ़ता के फन्दे से निकल गये हैं, वे उस लाश को नहीं खाते हैं जिसमें से जान निकल गयी है।

९. जानदारों को मारने और खाने से परहेज़ करना सैकड़ों यज्ञों में बलि अथवा आहुति देने से बढ़कर है।

१०. देखो; जो पुरुष हिंसा नहीं करता और माँस खाने से परहेज़ करता है, सारा संसार हाथ जोड़ कर उसका सम्मान करता है।

---

* यह पद उन लोगों के लिये है जो कहते हैं–हम खुद हलाल नहीं करते, हमें बना-बनाया माँस मिलता है।

छब्बीसवाँ परिच्छेद

तप

१. शान्तिपूर्वक दुःख सहन करना और जीव-हिंसा न करना; बस इन्हीं में तपस्या का समस्त सार है।

२. तपस्या तेजस्वी लोगों के लिये ही है। दूसरे लोगों का तप करना बेकार है।

३. तपस्वियों को खिलाने-पिलाने और उनकी सेवा-सुश्रूषा करने के लिये कुछ लोग होने चाहियें—क्या इसी विचार से बाकी लोग तप करना भूल गये हैं?

४. यदि तुम अपने शत्रुओं का नाश करना और उन लोगों को उन्नत बनाना चाहते हो जो तुम्हें प्यार करते हैं तो जान रक्खो कि यह शक्ति तप में है।

५. तप समस्त कामनाओं को यथेष्ट रूप से पूर्ण कर देता है। इसीलिये लोग दुनिया में तपस्या के लिये उद्योग करते हैं।

६. जो लोग तपस्या करते हैं वही तो वास्तव में अपना भला करते हैं। बाकी सब तो लालसा के जाल में फँसे हुए हैं और अपने को केवल हानि ही पहुँचाते हैं।

७. सोने को जिस आग में पिघलाते हैं वह जितनी ही ज्यादा तेज होती है सोने का रङ्ग उतना ही ज्यादा तेज निकलता है, ठीक इसी तरह तपस्वी जितनी ही कड़ी मुसीबतें सहता है उसकी प्रकृति उतनी ही अधिक विशुद्ध हो उठती है।

८. देखो; जिसने अपने पर प्रभुत्व प्राप्त कर लिया है उस पुरुषोत्तम को सभी लोग पूजते हैं।

९. देखो; जिन लोगों ने तप करके शक्ति और सिद्धि प्राप्त कर ली है, वे मृत्यु को जीतने में भी सफल हो सकते हैं।

१०. अगर दुनिया में हाजतमन्दों की तादाद अधिक है तो इसका कारण यही है कि वे लोग जो तप करते हैं, थोड़े हैं, और जो तप नहीं करते हैं, उनकी संख्या अधिक है।

सत्ताईसवाँ परिच्छेद

मक्कारी

१. स्वयं उसके ही शरीर के पंचतत्व मन ही मन उस पर हँसते हैं जब कि वे मक्कार की चालबाज़ी और ऐयारी को देखते हैं।

२. शानदार रोबवाला चेहरा किस काम का, जब कि दिल के अन्दर बुराई भरी है और दिल इस बात को जानता है।

३. वह कापुरुष जो तपस्वी का सी तेजस्वो आकृति बनाये रखता है, उस गधे के समान है जो शेर की खाल पहने हुए घास चरता है।

४. उस मनुष्य को देखो जो धर्मात्मा के भेष में छुपा रहता है और दुष्कर्म करता है। वह उस बहेलिये के समान है जो झाड़ी के पीछे छुप कर चिड़ियों को पकड़ता है।

५. मक्कार आदमी दिखावे के लिये पवित्र बनता है और कहता है—मैंने अपनी इच्छाओं, इन्द्रिय-लालसाओं को जीत लिया है, मगर अन्त में वह दुःख भोगेगा और रो रो कर कहेगा-मैंने क्या किया? हाय! मैंने क्या किया?

६. देखो; जो पुरुष वास्तव में अपने दिल से तो किसी चीज़ को छोड़ता नहीं मगर बाहर त्याग का आडम्बर रचता है और लोगों को ठगता है, उससे बढ़कर कठोर-हृदय दुनिया में और कोई नहीं है।

७. घुँघची देखने में ख़ूबसूरत होती है मगर उसके दूसरी तरफ़ काला दाग़ होता है। कुछ आदमी भी उसी की तरह होते हैं। उनका बाहरी रूप तो ख़ूबसूरत होता है किन्तु उनका अन्तःकरण बिल्कुल कलुषित होता है।

८. ऐसे बहुत हैं कि जिनका दिल तो नापाक है मगर वे तीर्थ स्थानों में स्नान कर के घूमते फिरते हैं।

९. तीर सीधा होता है और तम्बूरे में कुछ झुकाव रहता है। इसलिये आदमियों को सूरत से नहीं; बल्कि उनके कामों से पहिचानो।

१०. दुनिया जिसे बुरा कहती है अगर तुम उससे बचे हुए हो तो फिर न तुम्हें जटा रखाने की ज़रुरत है, न सिर मुँड़ाने की।

अट्ठाईसवां परिच्छेद

सच्चाई

१. सच्चाई क्या है ? जिससे दूसरों को, किसी तरह का, जरा भी नुक़्सान न पहुँचे, उस बात को बोलना ही सच्चाई है।

२. उस झूठ में भी सच्चाई की ख़ासियत है जिसके फल स्वरूप सरासर नेकी ही होती हो।

३. जिस बात को तुम्हारा मन जानता है कि वह झूठ है, उसे कभी मत बोलो क्योंकि झूठ बोलने से खुद तुम्हारी अन्तरात्मा ही तुम्हें जलायेगी।

४. देखो, जिस मनुष्य का हृदय झूठ से पाक है, वह सब के दिलों पर हुकूमत करता है।

५. जिसका मन सत्य में निमग्न है वह पुरुष तपस्वी से भी महान् और दानी से भी श्रेष्ठ है।

६. मनुष्य के लिये इससे बढ़ कर सुयश और कोई नहीं है कि लोगों में उसकी प्रसिद्धि हो कि वह झूठ बोलना जानता ही नहीं। ऐसा पुरुष अपने शरीर को कष्ट दिये बिना ही सब तरह की नियामतों को पा जाता है।

७. झूठ न बोलना, झूठ न बोलना—यदि मनुष्य इस धर्म का पालन कर सके तो उसे दूसरे धर्मों का पालन करने की जरूरत नहीं है।*

८. † शरीर की स्वच्छता का सम्बन्ध तो जल से है, मगर मन की पवित्रता सत्य भाषण से ही सिद्ध होती है।

९. योग्य पुरुष और सब तरह की रोशनी को रोशनी नहीं कहते; केवल सत्य की ज्योति को ही वे सच्चा प्रकाश मानते हैं।

१०, मैंने इस संसार में बहुत सी चीजें देखी हैं; मगर मैंने जो चीजें देखी हैं, उनमें सत्य से बढ़ कर उत्तम और कोई चीज नहीं है।

---

* यह मूल का शब्दशः अनुवाद है। श्री० वी० वी० एस० आयर ने उसका अर्थ इस तरह किया है—यदि मनुष्य बिना झूठ बोले रह सके तो उसके लिये और सब धर्म अनावश्यक हैं।

† अद्भिर्गात्राणि शुद्ध्यन्तिमनः सत्येन शुद्ध्यति।

मनु।

उन्तीसवाँ परिच्छेद

क्रोध न करना

१. जिस में चोट पहुँचाने की शक्ति है उसीमें सहनशीलता का होना समझा जा सकता है। जिस में शक्ति ही नहीं है वह क्षमा करे या न करे उससे किसी का क्या बनता बिगड़ता है?

२. अगर तुम में हानि पहुँचाने की शक्ति न भी हो तब भी गुस्सा करना बुरा है। मगर जब तुम में शक्ति हो तब तो गुस्से से बढ़ कर खराब बात और कोई नहीं है।

३. तुम्हें नुक़सान पहुँचाने वाला कोई भी हो, गुस्से को दूर कर दो क्योंकि गुस्से से सैंकड़ों बुराइयें पैदा होती हैं।*

४. क्रोध हँसी की हत्या करता है और खुशी को नष्ट कर देता है। क्या क्रोध से बढ़कर मनुष्य का और भी कोई भयानक शत्रु है?

---

* गीता में क्रोध-जनित, परिमाणों का इस प्रकार वर्णन है—

क्रोधाद्भवति सम्मोहः सम्मोहात्स्मृति विभ्रमः।
स्मृति भ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात् प्रणश्यति॥

५. अगर तुम अपना भला चाहते हो तो गुस्से से दूर रहो; क्योंकि यदि तुम उससे दूर न रहोगे तो वह तुम्हें आ दबोचेगा और तुम्हारा सर्वनाश कर डालेगा।

६. अग्नि उसीको जलाती है जो उसके पास जाता है मगर क्रोधाग्नि सारे कुटुम्ब को जला डालती है।

७. जो गुस्से को इस तरह दिल में रखता है मानो वह कोई बहुमूल्य पदार्थ हो, वह उस मनुष्य के समान है जो जोर से जमीन पर अपना हाथ दे मारता है; इस आदमी के हाथ में चोट लगे बिना नहीं रह सकती और पहले आदमी का सर्वनाश अवश्यम्भावी है।

८. तुम्हें जो नुकसान पहुँचा है वह तुम्हें भड़कते हुए अङ्गारों की तरह जलाता भी हो तब भी बेहतर है कि तुम क्रोध से दूर रहो।

९. मनुष्य की समस्त कामनाएँ तुरन्त ही पूर्ण हो जाया करें यदि वह अपने मन से क्रोध को दूर कर दे।

१०. जो गुस्से के मारे आपे से बाहर है वह मुर्दे के समान है, मगर जिसने क्रोध को त्याग दिया है वह सन्तों के समान है।

तीसवां परिच्छेद

अहिंसा

१. अहिंसा सब धर्मों में श्रेष्ठ है। हिंसा के पीछे हर तरह का का पाप लगा रहता है।*

२. हाजतमन्द के साथ अपनी रोटी बाँट कर खाना और हिंसा से दूर रहना यह सब पैग़म्बर में के समस्त उपदेशों में श्रेष्ठतम उपदेश है।

३. अहिंसा सब धर्मों में श्रेष्ठ धर्म है। सचाई का दर्जा उसके बाद है।

---

* पीछे कह चुके हैं:—सत्य से बढ़ कर और कोई चीज़ नहीं है (परि० २८ पद १०) पर यहाँ सत्य का दूसरा दर्जा बताया है। मनुष्य तल्लीन होकर जब किसी बात का ध्यान करता है तब वही बात उसे सब से अधिक प्रिय मालूम पड़ती है। इससे कभी २ इस प्रकार का विरोध भास उत्पन्न हो जाता है। यह मानव स्वभाव का एक चमत्कार है।

लालाजी ने अपना विचार इस प्रकार प्रकट किया है—

Ahinsa is the highest religion but there is no religion higher than truth. Ahinsa and truth must be reconciled, in fact in essence they are one and the same.

लाला लाजपत राय, सभापति हिन्दू महासभा

४. नेक रास्ता कौन सा है ? यह वही मार्ग है जिस में इस बात का ख़याल रखा जाता है कि छोटे से छोटे जानवर को भी मरने से किस तरह बचाया जावे ।

५. जिन लोगों ने इस पापमय सांसारिक जीवन को त्याग दिया है उन सब में मुख्य वह पुरुष है जो हिंसा के पास से डर कर अहिंसा-मार्ग का अनुसरण करता है ।

६. धन्य है वह पुरुष जिसने अहिंसा-व्रत धारण किया है । मौत जो सब जीवों को खा जाती है, उसके दिनों पर हमला नहीं करती ।

७. तुम्हारी जान पर भी आ बने तब भी किसी की प्यारी जान मत लो ।

८. लोग कह सकते हैं कि बलि देने से बहुत सारी नियामतें मिलती हैं, मगर पाक दिलवालों की दृष्टि में वे नियामतें जो हिंसा करने से मिलती हैं, जघन्य और घृणास्पद हैं ।

९. जिन लोगों का जीवन हत्या पर निर्भर है, समझदार लोगों की दृष्टि में वे मुर्दाखोरों के समान हैं ।

१०. देखो, वह आदमी जिसका सड़ा हुआ शरीर पीवदार ज़ख्मों से भरा हुआ है, वह गुज़रे ज़माने में खून बहाने वाला रहा होगा, ऐसा बुद्धिमान लोग कहते हैं ।

द्वितीय खण्ड

ज्ञान

इक्कीसवाँ परिच्छेद

सांसारिक चीज़ों की निस्सारता

१. उस मोह से बढ़कर मूर्खता की और कोई बात नहीं है कि जिसके कारण अस्थायी पदार्थों को मनुष्य स्थिर और नित्य समझ बैठता है।

२. धनोपार्जन करना तमाशा देखने के लिये आयी हुई भीड़ के समान है और धन का क्षय उस भीड़ के तितर-बितर हो जाने के समान है—अर्थात् धन क्षणस्थायी है।

३. समृद्धि क्षणस्थायी है। यदि तुम समृद्धि-शाली हो गये हो तो ऐसे काम करने में देर न करो जिनसे स्थायी लाभ पहुँच सकता है।

४. समय, देखने में भोलाभाला और बे गुनाह मालूम होता है, मगर वास्तव में वह एक आरा है जो मनुष्य के जीवन को बराबर काट रहा है।

५. नेक काम करने में जल्दी करो, ऐसा न हो कि ज़ुबान बन्द हो जाय और हिचकियें आने लगें।

६. कल तो एक आदमी था, और आज वह नहीं है। दुनिया में यही बड़े अचरज की बात है।*

७. आदमी को इस बात का तो पता नहीं है कि पल भर के बाद वह जीता भी रहेगा कि नहीं, मगर उसके ख्यालों को देखो तो वे करोड़ों की संख्या में हैं।

८. पर निकलते ही चिड़िया का बच्चा टूटे हुए अण्डे को छोड़ कर उड़ जाता है। शरीर और आत्मा की पारस्परिक मित्रता का यही नमूना है।

९. मौत नींद के समान है और जिन्दगी उस नींद से जागने के समान है।

१०. क्या आत्मा का अपना कोई खास घर नहीं है जो वह इस वाहियात शरीर में आश्रय लेता है।

---

* 'नासतो विद्यते भावो, नाभावो विद्यते सतः'—गीता का यह मन्तव्य कुछ इसके विरुद्ध सा दिखाई पड़ता है। बात यह है—गीता ने किया है एक सूक्ष्म तत्व का तात्विक निदर्शन और यह है चर्म-चक्षुओं से दीखने वाले स्थूल प्रत्यक्ष का वर्णन।

गीता में मृत्यु को कपड़े बदलने से उपमा दी है और रवीन्द्र बाबू ने उसे बालक को एक स्तन से हटा कर दूसरा स्तन पान कराने के समान कहा है।

बत्तीसवाँ परिच्छेद
त्याग

१. मनुष्य ने जो चीज़ छोड़ दी है उस से पैदा होने वाले दुःख से उसने अपने को मुक्त * कर लिया है।

२. त्याग से अनेकों प्रकार के सुख उत्पन्न होते हैं, इसलिये अगर तुम उन्हें अधिक समय तक भोगना चाहो तो शीघ्र त्याग करो।

३. अपनी पाँचों इन्द्रियों का दमन करो और जिन चीज़ों से तुम्हें सुख मिलता है उन्हें बिल्कुल ही त्याग दो।

---

* वांच्छित वस्तु को प्राप्त करने की चिन्ता, खोजाने की आशंका और न मिलने से निराशा तथा भोगाधिक्य से जो दुःख होते हैं, उनसे वह बचा हुआ है।

इन्द्रिय-दमन तथा तप और संयम का यही सच्चा मार्ग है। यह एक तरह की कसरत है जिससे मन को साधा जा सकता है। बी अम्मा की चौलाई वाली कहानी इसका सरल सुन्दर उदाहरण है। उन्हें चौलाई का शाक बहुत पसन्द था। एक रोज़ बड़े प्रेम से उन्होंने शाक बनाया किन्तु तैयार हो जाने पर उन्होंने खाने से इन्कार कर दिया, जब कारण पूछा गया तो कहा—आज मेरा मन इस चौलाई की भाजी में बहुत लग गया है। मैं सोचती हूँ, यदि मैं अपने को वासना के वशीभूत हो जाने दूँगी और कल कहीं दूसरे पति की इच्छा हुई तब मैं क्या करूँगी।

भोग भोगकर शान्ति लाभ करनेकी बात कोरी विडम्बना मात्र है। एक तो 'हविषा कृष्ण वर्त्मेव भूयएवाभिवर्द्धते' इस कल्पनानुसार तृष्णा बढ़ती ही जाती है। दूसरे, थके हुए बूढ़े घोड़े को निकालने से लाभ ही क्या? जब इन्द्रियों में बल है और शरीरमें स्फूर्ति है तभी उन्हें संयमसे कसकर सन्मार्ग

४. अपने पास कुछ भी न रखना, यही व्रत-धारी का नियम है। एक चीज़ को भी अपने पास रखना मानो उन बन्धनों में फिर आ फँसना है जिन्हें मनुष्य एक बार छोड़ चुका है।

५. जो लोग पुनर्जन्मके चक्रको बन्द करना चाहते हैं, उनके लिये यह शरीर भी अनावश्यक है। फिर भला अन्य बन्धन कितने अनावश्यक होंगे ? *

६. "मैं" और "मेरे" के जो भाव हैं, वे घमण्ड और खुदनुमाई के अतिरिक्त और कुछ नहीं हैं। जो मनुष्य उनका दमन कर लेता है वह देव-लोक से भी उच्च लोक को प्राप्त होता है।

७. देखो; जो मनुष्य लालच में फँसा हुआ है और उससे निकलना नहीं चाहता, उसे दुःख आ कर घेर लेगा और फिर मुक्त न करेगा।

८. जिन लोगों ने सब कुछ त्याग दिया है, वे मुक्ति के मार्ग में हैं, मगर बाक़ी सब मोह-जाल में फँसे हुए हैं।

९. ज्योंही लोभ-मोह दूर हो जाते हैं, उसी दम पुनर्जन्म बन्द हो जाता है। जो मनुष्य इन बन्धनों को नहीं काटते वे भ्रमजाल में फँसे रहते हैं।

१०. उसी ईश्वर की शरण में जाओ कि जिसने सब मोहों को छिन्न-भिन्न कर दिया है। और उसी का आश्रय लो जिससे सब बन्धन टूट जायँ।

में लगाने की आवश्यकता है। यहाँ इन्द्रियों को संयम और अनुशासन द्वारा अधिक सक्षम बनाने ही के लिये यह आदेश है, उन्हें सुखा कर मार डालने के लिये नहीं!

* माया, मोह और अविद्या।

तेंतीसवाँ परिच्छेद

सत्य का आस्वादन

१. मिथ्या और अनित्य पदार्थों को सत्य समझने के भ्रम से ही मनुष्य को दुःखमय जीवन भोगना पड़ता है।

२. देखो, जो मनुष्य भ्रमात्मक भावों से मुक्त है और जिसकी दृष्टि स्वच्छ है, उसके लिये दुःख और अन्धकार का अन्त हो जाता है और आनन्द उसे प्राप्त होता है।

३. जिसने अनिश्चित बातों से अपने को मुक्त कर लिया है और जिसने सत्य को पा लिया है, उसके लिये स्वर्ग पृथ्वी से भी अधिक समीप है।

४. मनुष्य जैसी उच्च योनि को प्राप्त कर लेने से भी कोई लाभ नहीं, अगर आत्मा ने सत्य का आस्वादन नहीं किया।

५. कोई भी बात हो, उसमें सत्य को झूँठ से पृथक् कर देना ही मेधा का कर्त्तव्य है।

६. वह पुरुष धन्य है जिसने गम्भीरतापूर्वक स्वाध्याय किया है और सत्य को पा लिया है;

वह ऐसे रास्ते से चलेगा जिससे फिर उसे इस दुनिया में आना न पड़ेगा।

७. निःसन्देह जिन लोगों ने ध्यान और धारणा के द्वारा सत्य को पा लिया है, उन्हें होने वाले जन्मों का ख़याल करने की ज़रूरत नहीं है।*

८. जन्मों की जननी अविद्या से छुटकारा पाना और सच्चिदानन्द को प्राप्त करने की चेष्टा करना ही बुद्धिमानी है।

९. देखो, जो पुरुष मुक्ति के साधनों को जानता है और सब मोहों के जीतने का प्रयत्न करता है; भविष्य में आने वाले सब दुःख उससे दूर हो जाते हैं।

१०. काम, क्रोध और मोह ज्यों ज्यों मनुष्य को छोड़ते जाते हैं; दुःख भी उनका अनुसरण करके धीरे धीरे नष्ट हो जाते हैं।

---

* अथवा—जिन्होंने विमर्पण और मनन के द्वारा सत्य को पा लिया है उनके लिये पुनर्जन्म नहीं है।

चौतीसवाँ परिच्छेद

कामना का दमन

१. कामना एक बीज है जो प्रत्येक आत्मा को सर्वदा ही अनवरत—कभी न चूकने वाले—जन्मों की फ़सल प्रदान करता है।

२. यदि तुम्हें किसी बात की कामना करना ही है तो जन्मों के चक्र से छुटकारा पाने की कामना करो और वह छुटकारा तभी मिलेगा जब तुम कामना को जीतने की इच्छा करोगे।

३. निष्कामना से बढ़ कर यहाँ—मर्त्यलोक में—दूसरी और कोई सम्पत्ति नहीं है और तुम स्वर्ग में भी जाओ तुम्हें ऐसा खजाना न मिल सकेगा जो उसका मुकाबिला करे।

४. कामना से मुक्त होने के सिवाय पवित्रता और कुछ नहीं है। और यह मुक्तिपूर्ण सत्य की इच्छा करने से ही मिलती है।

५. वही लोग मुक्त हैं जिन्होंने अपनी इच्छाओं को जीत लिया है; बाकी लोग देखने में स्वतन्त्र मालूम पड़ते हैं मगर वास्तव में वे बन्धन से जकड़े हुए हैं।

६. यदि तुम नेकी को चाहते हो तो कामना से दूर रहो क्योंकि कामना एक जाल और निराशा मात्र है।

७. यदि कोई मनुष्य अपनी समस्त वासनाओं को सर्वथा त्याग दे तो जिस राह से आने की वह आज्ञा देता है, मुक्ति उधर ही से आकर उससे मिलती है।

८. जो किसी बात की कामना नहीं करता, उसको कोई दुःख नहीं होता, मगर जो चीजों को पाने के लिये मारा-मारा फिरता है उस पर आफ़त पर आफ़त पड़ती है।

९. यहाँ भी मनुष्य को स्थायी सुख प्राप्त हो सकता है बशर्ते कि वह अपनी इच्छा का ध्वंस कर डाले जो कि सब से बड़ी आपत्ति है।

१०. इच्छा कभी तृप्त नहीं होती किन्तु यदि कोई मनुष्य उसको त्याग दे तो वह उसी दम सम्पूर्णता को प्राप्त कर लेता है।

पैंतीसवाँ परिच्छेद

भवितव्यता—होनी

१. मनुष्य दृढ़-प्रतिज्ञ हो जाता है जब भाग्य-लक्ष्मी उस पर प्रसन्न हो कर कृपा करना चाहती है। मगर मनुष्य में शिथिलता आ जाती है, जब भाग्य-लक्ष्मी उसे छोड़ने को होती है।

२. दुर्भाग्य शक्तियों को मन्द कर देता है, मगर जब भाग्य-लक्ष्मी कृपा दिखाना चाहती है तो वह पहले बुद्धि को विस्फूर्त कर देती है।

३. ज्ञान और सब तरह की चतुरता से क्या लाभ? अन्दर जो आत्मा है उसका ही प्रभाव सर्वोपरि है।

४. दुनिया में दो चीजें हैं जो एक दूसरे से बिल्कुल नहीं मिलतीं। धन-सम्पत्ति एक चीज है और साधुता तथा पवित्रता बिल्कुल दूसरी चीज *।

५. जब किसी के दिन बुरे होते हैं तो भलाई भी बुराई में बदल जाती है, मगर जब दिन फिरते हैं तो बुरी चीजें भी भली हो जाती हैं।

---

*सुई के नकुए में से ऊँट का निकल जाना तो सरल है पर धनिक पुरुष का स्वर्ग में प्रवेश करना असम्भव है।
—क्राइस्ट

६.   भवितव्यता जिस बात को नहीं चाहती, उसे तुम अत्यन्त चेष्टा करने पर भी नहीं रख सकते और जो चीजें तुम्हारी हैं-तुम्हारे भाग्य में वदी हैं—उन्हें तुम इधर उधर फेंक भी दो, फिर भी वे तुम्हारे पास से नहीं जावेंगी।

७.   उस महान् शासक की आज्ञा के विपरीत करोड़पति भी अपनी सम्पत्ति का ज़रा भी उपभोग नहीं कर सकता।

८.   ग़रीव लोग निःसन्देह अपने दिल को त्याग की ओर झुकाना चाहते हैं किन्तु भवितव्यता उन्हें उन दुःखों के लिये रख छोड़ती है जो उनके भाग्य† में वदे हैं।

९.   अपना भला देख कर जो मनुष्य खुश होता है, उसे आपत्ति आने पर क्यों दुखी होना चाहिये ?

१०.   होनी से बढ़ कर बलवान और कौन है ? क्योंकि उसका शिकार जिस वक्त उसे पराजित करने की तरकीब सोचता है, उसी वक्त वह पेश क़दमी कर के उसे नीचा दिखाती है।

---

† 'मज़े हमने उड़ाये हैं मुसीबत कौन झेलेगा' ? जो सुख मनाता है उसे दुःख भी भोगना ही होगा। सुख-दुःख तो एक दूसरे का पीछा करने वाले द्वन्द हैं।

द्वितीय भाग

अर्थ

प्रथम खण्ड

राजा

छत्तीसवाँ परिच्छेद

राजा के गुण

१. जिसके पास सेना, आबादी, धन, मन्त्री, सहायक मित्र और दुर्ग ये छः चीजें यथेष्ट रूप से हैं; वह राजाओं में शेर है।

२. राजा में साहस, उदारता, बुद्धिमानी और कार्य-शक्ति—इन बातों का कभी अभाव नहीं होना चाहिये।

३. जो पुरुष दुनिया में हुकूमत करने के लिये पैदा हुए हैं उन्हें चौकसी, जानकारी और निश्चय-बुद्धि—ये तीनों खूबियें कभी नहीं छोड़तीं।

४. राजा को धर्म करने में कभी न चूकना चाहिये और अधर्म को दूर करना चाहिये। उसे ईर्ष्या पूर्वक अपनी इज्ज़त की रक्षा करनी चाहिये, मगर वीरता के नियमों के विरुद्ध दुराचरण कभी न करना चाहिये।

५. राजा को इस बात का ज्ञान रखना चाहिये कि अपने राज्य के साधनों की विस्फूर्ति और वृद्धि किस तरह की जाये और ख़ज़ाने को किस प्रकार पूर्ण किया जाये। धन की रक्षा किस तरह की जाय और किस प्रकार, समुचित रूप से, उसका ख़र्च किया जाय।

६. यदि समस्त प्रजा की पहुँच राजा तक हो और राजा कभी कठोर वचन न बोले तो उसका राज्य सब से ऊपर रहेगा।

७. देखो, जो राजा खूबी के साथ दान दे सकता है और प्रेम के साथ शासन करता है, उसका नाम सारी दुनियाँ में फैल जायगा।

८. धन्य है वह राजा, जो निष्पक्षपात-पूर्वक न्याय करता है और अपनी प्रजा की रक्षा करता है; वह मनुष्यों में देवता समझा जायेगा।

९. देखो, जिस राजा में कानों को अप्रिय लगने वाले वचनों को सहन करने का गुण है, संसार निरन्तर उसकी छत्र-छाया में रहेगा।

१०. जो राजा उदार, दयालु और न्यायनिष्ठ है और जो अपनी प्रजा की प्रेम-पूर्वक सेवा करता है, वह राजाओं के मध्य में ज्योतिस्वरूप है।

सैंतीसवाँ परिच्छेद

शिक्षा

१. प्राप्त करने योग्य जो ज्ञान है, उसे सम्पूर्ण रूप से प्राप्त करना चाहिये और उसे प्राप्त करने के पश्चात् उसके अनुसार व्यवहार करना चाहिये।

२. मानव जाति की जीती जागती दो आँखें हैं। एक को अङ्क कहते हैं और दूसरी को अक्षर।

३. शिक्षित लोग ही आँख वाले कहलाये जा सकते हैं, अशिक्षितों के सिर में तो केवल दो गड्ढे होते हैं।

४. विद्वान जहाँ कहीं भी जाता है अपने साथ आनन्द ले जाता है, लेकिन जब वह विदा होता है तो पीछे दुःख छोड़ जाता है।

५. यद्यपि तुम्हें गुरु या शिक्षक के सामने उतना ही अपमानित और नीचा बनना पड़े जितना कि एक भिक्षुक को धनवान् के समक्ष बनना पड़ता है, फिर भी तुम विद्या सीखो; मनुष्यों में अधम वही लोग हैं जो विद्या सीखने से इनकार करते हैं।

६. सोते को तुम जितना ही खोदोगे उतना ही अधिक पानी निकलेगा; ठीक इसी तरह, तुम जितना ही अधिक सीखोगे, उतनी ही तुम्हारी विद्या में वृद्धि होगी।

७. विद्वान् के लिये सभी जगह उसका घर है और सभी जगह उसका स्वदेश है। फिर लोग मरने के दिन तक विद्या-प्राप्त करते रहने में लापरवाही क्यों करते हैं?

८. मनुष्य ने एक जन्म में जो विद्या प्राप्त कर ली है वह उसे समस्त आगामी जन्मों में भी उच्च और उन्नत बना देगी।

९. विद्वान् देखता है कि जो विद्या उसे आनन्द देती है, वह संसार को भी आनन्दप्रद होती है और इसीलिये वह विद्या को और भी अधिक चाहता है।

१०. विद्या मनुष्य के लिये एक दोष-त्रुटिहीन और अविनाशी निधि है। उसके सामने दूसरी तरह की दौलत कुछ भी नहीं है।

अड़तीसवाँ परिच्छेद

बुद्धिमानों के उपदेश को सुनना

१. सब से अधिक बहुमूल्य खज़ानों में कानों का खज़ाना है। निःसन्देह वह सब प्रकार की सम्पत्ति से श्रेष्ठ है।

२. जब कानों को देने के लिये भोजन न रहेगा तो पेट के लिये भी कुछ भोजन दे दिया जायगा।*

३. देखो, जिन लोगों ने बहुत से उपदेशों को सुना है, वे पृथ्वी पर देवता स्वरूप हैं।

४. यद्यपि किसी मनुष्य में शिक्षा न हो फिर भी उसे उपदेश सुनने दो, क्योंकि जब उसके ऊपर मुसीबत पड़ेगी तब उनसे ही उसे कुछ सान्त्वना मिलेगी।

५. धर्मात्मा लोगों की नसीहत एक मज़बूत लाठी की तरह है, क्योंकि जो उसके अनुसार काम करते हैं, उन्हें वह गिरने से बचाती है।

---

*अर्थात् जब तक सुनने के लिये उपदेश हों तब तक भोजन का ख़याल ही न करना चाहिये।

६. अच्छे शब्दों को ध्यान पूर्वक सुनो, चाहे वे थोड़े से ही क्यों न हों; क्योंकि वे थोड़े से शब्द भी तुम्हारी शान में मुतनासिब तरक्की करेंगे।

७. देखो, जिस पुरुष ने खूब मनन किया है और बुद्धिमानों के वचनों को सुन-सुनकर अनेक उपदेशों को जमा कर लिया है; वह भूल से भी कभी निरर्थक वाहियात बातें नहीं करता।

८. सुन सकने पर भी वह कान बहरा है, जिसे उपदेशों को सुनने का अभ्यास नहीं है।

९. जिन लोगों ने बुद्धिमानों के चातुरीभरे शब्दों को नहीं सुना है, उनके लिये वक्तृता की नम्रता प्राप्त करना कठिन है।

१०. जो लोग जबान से तो चखते हैं, मगर कानों के स्वारस्य से अनभिज्ञ हैं, वे चाहे जियें या मरें, इससे दुनिया का क्या आता-जाता है।

उनतालीसवाँ परिच्छेद

बुद्धि

१. बुद्धि समस्त अचानक आक्रमणों को रोकने वाला कवच है। यह ऐसा दुर्ग है जिसे दुश्मन भी घेर कर नहीं जीत सकते।

२. यह बुद्धि ही है जो इन्द्रियों को इधर-उधर भटकने से रोकती है, उन्हें बुराई से दूर रखती है और नेकी की ओर प्रेरित करती है।

३. समझदार बुद्धि का काम है कि हर एक बात में झूठ को सत्य से निकाल कर अलहदा कर दे; फिर उस बात का कहने वाला कोई भी क्यों न हो।

४. बुद्धिमान मनुष्य जो कुछ कहता है, इस तरह से कहता है कि उसे सब कोई समझ सकें; और दूसरों के मुँह से निकले हुए शब्दों के आन्तरिक भाव को वह समझ लेता है।

५. बुद्धिमान पुरुष सारी दुनिया के साथ मिलनसारी से पेश आता है और उसका मिजाज हमेशा एक सा रहता है। उनकी मित्रता न तो पहिले बेहद बढ़ जाती है, और न एकदम घट जाती है।

६. यह भी एक बुद्धिमानी का काम है कि मनुष्य लोक-रीति के अनुसार व्यवहार करे ?*

७. समझदार आदमी पहिले ही से जान जाता है कि क्या होने वाला है, मगर मूर्ख आगे आने वाली बात को नहीं देख सकता।

८. खतरे की जगह बेतहाशा दौड़ पड़ना बेवक़्फ़ी है; बुद्धिमानों का यह भी एक काम है कि जिस से डरना ही चाहिये, उस से डरें।

९. †जो दूरन्देश आदमी हरएक मौक़े के लिये पहिले ही से तय्यार रहता है, वह उस वार से बचा रहेगा जो कँपकँपी पैदा करता है।

१०. ‡जिसके पास बुद्धि है उसके पास सब कुछ है मगर मूर्ख के पास सब कुछ होने पर भी कुछ नहीं है।

---

* यद्यपि शुद्धं लोक-विरुद्धं नाचरणीयम् नाचरणीयम्।— साधारण स्थिति में साधारण लोगों के लिये यह उचित हो सकता है, और प्रायः लोग इसी नियम का अनुसरण करते हैं। किंतु जिनकी आत्मा बलवती है, जिनके हृदय में जोश है और जो दुनिया के पीछे न घसीटे जाकर उसे आदर्श की ओर ले जाना चाहते हैं, वह आपत्तियों को ललकार कर आगे बढ़ते हैं। हद से बढ़ी हुई दुनियादारी से चिढ़कर ही कोई हिन्दी कवि कह गये हैं—

लीक लीक गाड़ी चलै, लीकहि चलैं कपूत।
लीक छाँड़ि तीनों चलैं, सायर-सिंह-सपूत॥

† दूरदर्शी पुरुष पहिले ही से आनेवाली आपत्ति का निराकरण कर देता है।

‡ 'यस्य बुद्धिः बलं तस्य, निर्बुद्धस्तु कुतो बलम्।'

चालीसवां परिच्छेद

दोषों को दूर करना

१. जो मनुष्य दर्प, क्रोध और विषय-लालसाओं से रहित है, उसमें एक प्रकार का गौरव रहता है जो उसके सौभाग्य को भूषित करता है ।

२. कञ्जूसी, अहङ्कार और बेहद ऐयाशी, ये राजा में विशेष दोष होते हैं ।*

३. देखो, जिन लोगों को अपनी कीर्ति प्यारी है वे अपने दोष को राई के समान छोटा होने पर भी ताड़ के वृक्ष के बराबर समझते हैं ।

४. अपने को बुराइयों से बचाने में सदा सचेत रहो, क्योंकि वे ऐसी दुश्मन हैं जो तुम्हारा सर्वनाश कर डालेंगी ।

---

* यदि राजा में ये दोष होते हैं तो उसके लिये वह विशेष रूप से भयङ्कर सिद्ध होते हैं और उसके पतन का कारण बन जाते हैं । पिछले दो दोष तो मानो सम्पत्ति की स्वाभाविक सन्तान हैं । बाहर शत्रुओं की तरह इन अधिक प्रबल आन्तरिक शत्रुओं से बुद्धिमान और उन्नतिशील राजा को सदा सावधान रहना चाहिये ।

५. जो आदमी अचानक आ पड़ने वाली मुसीवत के लिये पहिले ही से तयार नहीं रहता, वह ठीक उसी तरह नष्ट हो जायगा जिस तरह आग के अङ्गारे के सामने फूस का ढेर।

६. राजा यदि पहिले अपने दोषों को सुधार कर तब दूसरों के दोषों को देखे तो फिर कौन सा बुराई उसको छू सकती है ?

७. खेद है उस कञ्जूस पर, जो व्यय करने की जगह व्यय नहीं करता; उसकी दौलत बुरी तरह बरबाद होगी।

८. कञ्जूस, मक्खीचूस होना ऐसा दुर्गुण नहीं है जिसकी गिनती दूसरी बुराइयों के साथ की जा सके; उसका दर्जा ही बिल्कुल अलग है *।

९. किसी वक्त और किसी बात पर फूल कर आपे से बाहर मत हो जाओ; और ऐसे कामों में हाथ न डालो जिनसे तुम्हें कुछ लाभ न हों।

१०. तुम्हें जिन बातों का शौक है, उसका पता अगर तुम दुश्मनों को न चलने दोगे तो तुम्हारे दुश्मनों की साज़िशें बेकार साबित होंगी।†

---

* अर्थात् कृपणता साधारण नहीं असाधारण दुर्गुण है।

† दुश्मन को यदि मालूम हो जायगा कि राजा में ये निर्बलताएँ हैं अथवा उसे इन बातों से प्रेम है तो वह आसानी से राजा को वश में कर ले सकता है।

एकतालीसवां परिच्छेद

योग्य पुरुषों की मित्रता

१. जो लोग धर्म करते २ बुड्ढे हो गये हैं, उनकी तुम इज्जत करो, उनकी दोस्ती हासिल करने की कोशिश करो।

२. तुम जिन मुश्किलों में फँसे हुए हो, उनको जो लोग दूर कर सकते हैं और आने वाली बुराइयों से जो तुम्हें बचा सकते हैं, उत्साह पूर्वक उनकी मित्रता को प्राप्त करने की चेष्टा करो।

३. अगर किसी को योग्य पुरुषों की प्रीति और भक्ति मिल जाय तो वह महान् से महान् सौभाग्य की बात है।

४. जो लोग तुम से अधिक योग्यता वाले हैं, वे यदि तुम्हारे मित्र बन गये हैं तो तुमने ऐसी शक्ति प्राप्त कर ली है जिसके सामने अन्य सब शक्तियाँ तुच्छ हैं।

५. चूंकि मन्त्री ही राजा की आँखें हैं, इसलिये उनके चुनने में बहुत ही समझदारी और होशियारी से काम लेना चाहिये।

६. जो लोग सुयोग्य पुरुषों के साथ मित्रता का व्यवहार रख सकते हैं; उनके वैरी उनका कुछ बिगाड़ न सकेंगे।

७. जिस आदमी को ऐसे लोगों की मित्रता का गौरव प्राप्त है कि जो उसे डाँट-फटकार सकते हैं, उसे नुक्सान पहुँचाने वाला कौन है ?*

८. जो राजा ऐसे पुरुषों की सहायता पर निर्भर नहीं रहता कि जो वक्त पड़ने पर उसको झिड़क सकें; दुश्मनों के न रहने पर भी, उस का नाश होना अवश्यम्भावी है।

९. जिनके पास मूल धन नहीं है, उनको .लाभ नहीं मिल सकता; ठीक इसी तरह पायदारी उन लोगों को नसीब नहीं होती कि जो बुद्धिमानों की अविचल सहायता पर निर्भर नहीं रहते।

१०. ढेर के ढेर लोगों को दुश्मन बना लेना मूर्खता है; किन्तु नेक लोगों की दोस्ती को छोड़ना, उससे भी कहीं ज्यादा बुरा है।

---

* नरेश प्रायः खुशामदपसन्द होते हैं और वैभवशाली मनुष्य के लिये खुशामदियों की कमी भी नहीं रहती ऐसी अवस्था में स्पष्ट बात कह कर सन्मार्ग दिखाने वाला मनुष्य सौभाग्य से ही मिलता है। राजस्थान के नरेश यदि इस पर ध्यान दें तो वह बहुत सी कटुता से बचे रहें।

बयालीसवाँ परिच्छेद

कुसङ्ग से दूर रहना

१. लायक लोग बुरी सोहबत से डरते हैं, मगर छोटी तबियत के आदमी बुरे लोगों से इस तरह मिलते-जुलते हैं, मानो वे उनके ही कुटुम्ब वाले हैं।

२. पानी का गुण बदल जाता है—वह जैसी जमीन पर बहता है वैसा ही गुण, उसका हो जाता है—इसी तरह जैसी सङ्गत होती है, उसी तरह का असर पड़ता है।

३. आदमी की बुद्धि का सम्बन्ध तो दिमाग़ से है, मगर उसकी नेकनामी का दारोमदार उन लोगों पर है जिनकी सोहबत में वह रहता है।

४. मालूम तो ऐसा होता है कि मनुष्य का स्वभाव उसके मन में रहता है, किन्तु वास्तव में उसका निवासस्थान उस गोष्ठी में है कि जिसकी सङ्गत वह करता है।

५. मन की पवित्रता और कर्म की पवित्रता आदमी की सङ्गत की पवित्रता पर निर्भर है।

६. पाकदिल आदमी की औलाद नेक होगी और जिनकी सङ्गत अच्छी है, वे हर तरह से फलते-फूलते हैं।

७. मन की पवित्रता आदमी के लिये खज़ाना है और अच्छी सङ्गत उसे हर तरह का गौरव प्रदान करती है।

८. बुद्धिमान यद्यपि स्वयमेव सर्व-गुण-सम्पन्न होते हैं, फिर भी वे पवित्र पुरुषों के सुसंग को शक्ति का स्तम्भ समझते हैं।

९. धर्म मनुष्य को स्वर्ग ले जाता है और सत्पुरुषों की सङ्गति मनुष्यों को धर्माचरण में रत करती है।

१०. अच्छी सङ्गत से बढ़कर आदमी का सहायक और कोई नहीं है। और कोई भी चीज़ इतनी हानि नहीं पहुँचाती जितनी कि बुरी सङ्गत।

तेतालीसवाँ परिच्छेद

काम करने से पहिले सोच-विचार लेना

१. पहले यह देख लो कि इस काम में लागत कितनी लगेगी, कितना माल खराब जायगा और मुनाफ़ा इसमें कितना होगा; फिर तब उस काम में हाथ डालो।

२. देखो, जो राजा सुयोग्य पुरुषों से सलाह करने के बाद ही किसी काम को करने का फ़ैसला करता है; उसके लिये ऐसी कोई बात नहीं है जो असम्भव हो।

३. ऐसे भी उद्योग हैं जो मुनाफ़े का सब्ज़बाग़ दिखाकर अन्त में मूलधन--असल--तक को नष्ट कर देते हैं; बुद्धिमान लोग उनमें हाथ नहीं लगाते।

४. देखो, जो लोग नहीं चाहते कि दूसरे आदमी उन पर हँसें, वे पहिले अच्छी तरह से गौर किये बिना कोई काम शुरू नहीं करते।

५. सब बातों की अच्छी तरह पेशबन्दी किये बिना ही लड़ाई छेड़ देने का अर्थ यह है कि तुम दुश्मन को खूब होशियारी के साथ तय्यार की हुई ज़मीन पर लाकर खड़ा कर देते हो।

६. कुछ काम ऐसे हैं कि जिन्हें नहीं करना चाहिये और अगर तुम करोगे तो नष्ट हो जाओगे; और कुछ काम ऐसे हैं कि जिन्हें करना ही चाहिये और अगर उन्हें तुम न करोगे तो भी नष्ट हो जाओगे।

७. खूब अच्छी तरह सोचे बिना किसी काम के करने का निश्चय मत करो; वह मूर्ख है जो काम शुरू कर देता है और मन में कहता है कि बाद में सोच लेंगे।

८. देखो, जो आदमी ठीक रास्ते से काम नहीं करता उसकी सारी मेहनत अकारथ जायगी; उसकी मदद करने के लिये चाहे कितने ही आदमी क्यों न आयँ।

९. जिसके साथ तुम उपकार करना चाहते हो, उसके स्वभाव का यदि तुम ख्याल न रक्खोगे तो तुम भलाई करने में भी भूल कर सकते हो।

१०. तुम जो काम करना चाहते हो, सर्वथा अनिन्द्य होना चाहिये, क्योंकि दुनिया में उसकी बेकदरी होती है जो अपने अयोग्य काम करने पर उतारू हो जाता है।

चौआलीसवां परिच्छेद

शक्ति का विचार

१. जिस काम को तुम उठाना चाहते हो, उसमें जो मुश्किलें हैं, उन्हें अच्छी तरह देख भाल लो; उसके बाद अपनी शक्ति, अपने विरोधी की शक्ति तथा अपने तथा विरोधी के सहायकों की शक्ति का विचार कर लो और तब तुम उस काम को शुरू करो।

२. जो अपनी शक्ति को जानता है और जो कुछ उसे सीखना चाहिये, वह सीख चुका है और जो अपनी शक्ति और ज्ञान की सीमा के बाहर क़दम नहीं रखता, उसके आक्रमण कभी व्यर्थ नहीं जायँगे।

३. ऐसे बहुत से राजा हुए जिन्होंने जोश में आ कर अपनी शक्ति को अधिक समझा और काम शुरू कर बैठे; पर बीच में ही उनका काम तमाम हो गया।

४. जो आदमी शान्तिपूर्वक रहना नहीं जानते, जो अपने बलाबल का ज्ञान नहीं रखते और जो घमण्ड में चूर रहते हैं, उनका शीघ्र ही अन्त होता है।

५. हद से ज़्यादा तादाद में रखने से मोर-पङ्ख भी गाड़ी की धुरी को तोड़ डालेंगे ।

६. जो लोग वृक्ष की चोटी तक पहुँच गये हैं, वे यदि अधिक ऊपर चढ़ने की चेष्टा करेंगे तो अपने प्राण गँवायेंगे ।

७. तुम्हारे पास कितना धन है—इस बात का ख़याल रक्खो और उसके अनुसार ही तुम दान-दक्षिणा दो; योग-क्षेम का बस यही तरीक़ा है ।

८. भरनेवाली नाली अगर तङ्ग है तो कोई पर्वाह नहीं, बशर्ते कि खाली करनेवाली नाली ज़्यादा चौड़ी न हो ।

९. जो आदमी अपने धन का हिसाब नहीं रखता और न अपनी सामर्थ्य को देख कर काम करता है, वह देखने में खुशहाल भले ही मालूम हो, मगर वह इस तरह नष्ट होगा कि उसका नामोनिशान तक न रहेगा ।

१०. जो आदमी अपने धन का ख़याल न रख कर, खुले हाथों उसे लुटाता है, उसकी सम्पत्ति शीघ्र ही समाप्त हो जायगी ।

पैंतालीसवाँ परिच्छेद

अवसर का विचार

१. दिन में, कौआ उल्लू पर विजय पाता है; जो राजा अपने दुश्मन को हराना चाहता है उसके लिये अवसर एक बड़ी चीज है।

२. हमेशा वक्त को देखकर काम करना; यह एक ऐसी डोरी है जो सौभाग्य को मजबूती के साथ तुमसे आबद्ध कर देगी।

३. अगर ठीक मौके और साधनों का ख्याल रख कर काम शुरू करो और समुचित साधनों को उपयोग में लाओ तो ऐसी कौनसी बात है कि जो असम्भव हो?

४. अगर तुम मुनासिब मौके और उचित साधनों को चुनो तो तुम सारी दुनिया को जीत सकते हो।

५. जिनके हृदय में विजय-कामना है, वे चुपचाप मौका देखते रहते हैं; वे न तो घबराते हैं और न जल्दबाजी करते हैं।

६. चकनाचूर कर देने वाली चोट लगाने के पहिले, मेंढ़ा एक दफ़े पीछे हट जाता है; कर्म-वीर की निष्कर्मण्यता भी ठीक इसी तरह की होती है।

७. बुद्धिमान लोग उसी वक़्त अपने ग़ुस्से को प्रगट नहीं कर देते; वे उसको दिल ही दिल में रखते हैं, और अवसर की ताक में रहते हैं।

८. अपने दुश्मन के सामने झुक जाओ, जब तक उसकी अवनति का दिन नहीं आता। जब वह दिन आयेगा ता तुम आसानी के साथ, उसे सिर के बल नीचे फेंक दे सकोगे।

९. जब तुम्हें असाधारण अवसर मिले तो तुम हिचकिचाओ मत, बल्कि एकदम काम में जुट जाओ, फिर चाहे वह असम्भव ही क्यों न हो।*

१०. जब समय तुम्हारे विरुद्ध हो तो सारस की तरह निष्कर्मण्यता का बहाना करो; लेकिन जब वक़्त आवे तो सारस की तरह, तेज़ी के साथ, झपट कर हमला करो।

---

* अगर तुम्हें असाधारण अवसर मिल जावे तो फ़ौरन् दुस्साध्य काम को कर डालो।

छिआलीसवाँ परिच्छेद

स्थान का विचार

१. कार्यक्षेत्र की अच्छी तरह जाँच किये बिना लड़ाई न छेड़ो और न कोई काम शुरू करो। दुश्मन को छोटा मत समझो।

२. दुर्गवेष्ठित स्थान पर खड़ा होना शक्तिशाली और बलवान के लिये भी अत्यन्त लाभदायक है।

३. यदि समुचित स्थान को चुन लें और होशियारी के साथ युद्ध करें तो दुर्बल भी अपनी रक्षा कर के शक्तिशाली शत्रु को जीत सकते हैं।

४. अगर तुम सुदृढ़ स्थान पर जम कर खड़े हो और वहाँ डटे रहो तो तुम्हारे दुश्मनों की सब युक्तियाँ निष्फल सिद्ध होंगी।

५. मगर, पानी के अन्दर सर्व शक्तिशाली है; किन्तु बाहर निकलने पर वह दुश्मनों के हाथ का खिलौना है।

६. मज़बूत पहियों वाला रथ समुद्र के ऊपर नहीं दौड़ता है और न सागर-गामी जहाज़ खुश्क ज़मीन पर तैरता है।

७. देखो, जो राजा सब कुछ पहिले ही से तय कर रखता है और समुचित स्थान पर आक्रमण करता है; उसको अपने बल के अतिरिक्त दूसरे सहायकों की आवश्यकता नहीं है।

८. जिसकी सेना निर्बल है वह राजा यदि रण-क्षेत्र के समुचित भाग में जाकर खड़ा हो तो उसके शत्रुओं की सारी चेष्टायें व्यर्थ सिद्ध होंगी।

९. अगर रक्षा का सामान और अन्य साधन न भी हों तो भी किसी जाति को उसके देश में हराना मुश्किल है।

१०. देखो, उस मस्त हाथी ने, पलक मारे बिना, भाले-बरदारों की सारी फौज का मुक़ाबिल किया। लेकिन जब वह दलदली ज़मीन में फँस जायगा तो एक गीदड़ भी उसके ऊपर फ़तह पा लेगा।

सैंतालीसवाँ परिच्छेद

परीक्षा करके विश्वस्त मनुष्यों को चुनना

१. धर्म, अर्थ, काम और प्राणों का भय—ये चार कसौटियाँ हैं जिन पर कस कर मनुष्य को चुनना चाहिये।

२. जो अच्छे कुल में उत्पन्न हुआ है, जो दोषों से रहित है और जो बेइज्जती से डरता है, वही मनुष्य तुम्हारे लिये है।

३. जब तुम परीक्षा करोगे तो देखोगे कि अत्यन्त ज्ञानवान और शुद्ध मन वाले लोग भी हर तरह की अज्ञानता से सर्वथा रहित न निकलेंगे।

४. मनुष्य की भलाइयों को देखो और फिर उसकी बुराइयों पर नजर डालो; इन में जो अधिक हैं, बस समझलो वैसा ही उसका स्वभाव है।

५. क्या तुम यह जानना चाहते हो कि अमुक मनुष्य उदार-चित्त है या क्षुद्र-हृदय ? याद रक्खो कि आचार-व्यवहार चरित्र की कसौटी है।

६. सावधान! उन लोगों का विश्वास देख-भाल कर करना कि जिन के आगे-पीछे कोई नहीं है; क्योंकि उन लोगों के दिल ममता-हीन और लज्जा-रहित होंगे।

७. यदि तुम किसी मूर्ख को अपना विश्वास-पात्र सलाहकार बनाना चाहते हो, सिर्फ इस-लिये कि तुम उसे प्यार करते हो, तो, याद रक्खो कि वह तुम्हें अनन्त मूर्खताओं में ला पटकेगा।

८. देखो, जो आदमी परीक्षा लिये बिना ही दूसरे मनुष्य का विश्वास करता है, वह अपनी सन्तति के लिये अनेक आपत्तियों का बीज बो रहा है।

९. परीक्षा किये बिना किसी का विश्वास न करो; और अपने आदमियों की परीक्षा लेने के बाद हर एक को उसके लायक़ काम दो।

१०. अनजाने मनुष्य पर विश्वास करना और जाने हुए योग्य पुरुष पर सन्देह करना—ये दोनों ही बातें एक समान अनन्त आपत्तियों का कारण होती हैं।

अड़तालीसवाँ परिच्छेद

मनुष्यों की परीक्षा; उनकी नियुक्ति और निगरानी

१. देखो, जो आदमी नेकी को देखता है और बदी को भी देखता है, मगर पसन्द उसी बात को करता है कि जो नेक है; बस उसी आदमी को अपनी नौकरी में लो।

२. जो मनुष्य तुम्हारे राज्य के साधनों को विस्फूर्त कर सके और उस पर जो आपत्ति पड़े, उसे दूर कर सके, ऐसे ही आदमी के हाथ में अपने राज्य का प्रबन्ध सौंपो।

३. उसी आदमी को अपनी नौकरी के लिये चुनो कि जिसमें दया, बुद्धि और द्रुत निश्चय है, अथवा जो लालच से आज़ाद है।

४. बहुत से आदमी ऐसे हैं जो सब तरह की परीक्षाओं में उत्तीर्ण हो जाते हैं, मगर फिर भी ठीक कर्त्तव्य पालन के वक्त बदल जाते हैं।

५. आदमियों के सुचतुर-ज्ञान और उनकी शान्त कार्य-कारिणी शक्ति का खयाल करके ही उनके हाथों में काम सौंपना चाहिये; इसलिये नहीं कि वे तुम से प्रेम करते हैं।

६. सुचतुर मनुष्य को चुनकर उसे वही काम दो जिसके वह योग्य है; फिर जब काम करने का ठीक मौक़ा आये तो उससे काम शुरू करवा दो।

७. पहिले नौकर की शक्ति और उसके योग्य काम का खूब विचार कर लो और तब उसकी ज़िम्मेवारी पर वह काम उसके हाथ में सौंप दो।

८. जब तुम निश्चय कर चुको कि यह आदमी इस पद के योग्य है; तब तुम उसे उस पद को सुशोभित करने के क़ाबिल बना दो।

९. देखो, जो उस मनुष्य के मित्रता-सूचक व्यवहार पर रुष्ट होता है कि जो अपने कार्य में दक्ष है; भाग्य-लक्ष्मी उससे फिर जायगी।

१०. राजा को चाहिये कि वह हर रोज़ हर एक काम की देखभाल करता रहे; क्योंकि जब तक किसी देश के अहलकारों में खराबी पैदा न होगी, तब तक उस देश पर कोई आपत्ति न आयेगी।

उनचासवाँ परिच्छेद

न्याय-शासन

१. खूब गौर करो और किसी तरफ़ मत झुको, निष्पक्ष होकर कानूनदाँ लोगों की राय लो—न्याय करने का यही तरीक़ा है।

२. संसार जीवन-दान के लिये बादलों की ओर देखता है; ठीक इसी तरह न्याय के लिये लोग राज-दण्ड की ओर निहारते हैं।

३. राज-दण्ड ही ब्रह्म-विद्या और धर्म का मुख्य संरक्षक है।

४. देखो, जो राजा अपने राज्य की प्रजा पर प्रेम-पूर्वक शासन करता है, उससे राज्यलक्ष्मी कभी पृथक् न होगी।

५. देखो, जो राजा नियमानुसार राज-दण्ड धारण करता है, उसका देश समयानुकूल वर्षा और शस्य-श्री का घर बन जाता है।

६. राजा की विजय का कारण उसका भाला नहीं होता है; बल्कि यों कहिये कि वह राज-

दण्ड है, जो हमेशा सीधा रहता है और कभी किसी ओर को नहीं झुकता।

७. राजा अपनी समस्त प्रजा का रक्षक है और उसकी रक्षा करेगा उसका राज-दण्ड बशर्ते कि वह उसे कभी किसी ओर न झुकने दे।

८. जिस राजा की प्रजा आसानी से उसके पास तक नहीं पहुँच सकती और जो ध्यान पूर्वक न्याय-विचार नहीं करता, वह राजा अपने पद से भ्रष्ट हो जायगा और दुश्मनों के न होने पर भी वह नष्ट हो जायगा।

९. देखो, जो राजा आन्तरिक और वाह्य शत्रुओं से अपनी प्रजा की रक्षा करता है, वह यदि अपराध करने पर उन्हें दण्ड दे तो यह उसका दोष नहीं है—यह उसका कर्त्तव्य है।

१०. दुष्टों को मृत्यु-दण्ड देना अनाज के खेत से घास को बाहर निकालने के समान है।

पचासवां परिच्छेद

ज़ुल्म-अत्याचार

१. देखो, जो राजा अपनी प्रजा को सताता और उन पर ज़ुल्म करता है; वह हत्यारे से भी बदतर है।

२. जो राजदण्ड धारण करता है, उसकी प्रार्थना ही हाथ में तलवार लिये हुए डाकू के इन शब्दों के समान है—"खड़े रहो, और जो कुछ है रख दो।"

३. देखो, जो राजा प्रतिदिन राज्य-सञ्चालन की देख-रेख नहीं रखता और उसमें जो त्रुटियाँ हों, उन्हें दूर नहीं करता, उसका राजत्व दिन २ क्षीण होता जायगा।

४. शोक है उस विचारहीन राजा पर, जो न्याय-मार्ग से चल-विचल हो जाता है; वह अपना राज्य और धन सब कुछ खो बैठेगा।

५. निस्सन्देह ये अत्याचार-दलित दुःख से कराहते हुये लोगों के आँसू ही हैं जो राजा की समृद्धि को धीरे धीरे बहा ले जाते हैं।

६. न्याय-शासन द्वारा ही राजा को यश मिलता है और अन्याय-शासन उसकी कीर्ति को कलङ्कित करता है।

७. वर्षा-हीन आकाश के तले पृथ्वी की जो दशा होती है, ठीक वही दशा निर्दयी राजा के राज्य में प्रजा की होती है।

८. अत्याचारी राजा के शासन में ग़रीबों से ज़्यादा दुर्गति अमीरों की होती है।

९. अगर राजा न्याय और धर्म के मार्ग से बहक जायेगा तो स्वर्ग से ठीक समय पर वर्षा की बौछारें आना बन्द हो जायँगी।

१०. यदि राजा न्याय-पूर्वक शासन नहीं करेगा तो गाय के थन सूख जायँगे और ब्राह्मण * अपनी विद्या को भूल जायँगे।

---

* षट्कर्मा शब्द का प्रयोग मूल ग्रन्थ में है।

एक्यावनवां परिच्छेद

गुप्तचर

१. राजा को यह ध्यान में रखना चाहिये कि राजनीति-विद्या और गुप्त-चर—ये दो आँखें हैं, जिनसे वह देखता है।

२. राजा का काम है कि कभी कभी प्रत्येक मनुष्य की, प्रत्येक बात की हर रोज खबर रक्खे।

३. जो राजा गुप्तचरों और दूतों के द्वारा अपने चारों तरफ़ होने वाली घटनाओं की खबर नहीं रखता है—उसके लिये दिग्विजय नहीं है।

४. राजा को चाहिये कि अपने राज्य के कर्म-चारियों, अपने बन्धु-बान्धवों और शत्रुओं की गति-मति को देखने के लिये दूत नियत कर रक्खे।

५. जो आदमी अपने चेहरे का ऐसा भाव बना सके कि जिससे किसी को सन्देह न हो, जो किसी भी आदमी के सामने गड़बड़ाये नहीं और जो अपने गुप्त भेदों को किसी तरह प्रकट

न होने दे—भेदिया का काम करने के लिये वही ठीक आदमी है।

६. गुप्तचरों और दूतों को चाहिये कि वे संन्यासियों और साधु-सन्तों का भेष धारण करें और खोज कर सच्चा भेद निकालें और चाहे कुछ भी हो जाय, वे अपना भेद न बतायें।

७. जो मनुष्य दूसरों के पेट से भेद की बातें निकाल सकता है, और जिसकी गवेषणा सदा शुद्ध और निस्सन्दिग्ध होती है; वही भेद लगाने का काम करने लायक़ है।

८. एक दूत के द्वारा जो सूचना मिलती है, उसको दूसरे दूत की सूचना से मिला कर जाँचना चाहिए

९. इस बात का ध्यान रक्खो कि कोई दूत उसी काम में लगे हुए दूसरे दूतों को न जानने पाये और जब तीन दूतों की सूचनाएँ एक दूसरे से मिलती हों, तब उन्हें सच्चा मान सकते हो।

१०. अपने खुफ़िया पुलिस के अफ़सरों को खुले आम इनाम मत दो, क्योंकि यदि तुम ऐसा करोगे तो अपने ही राज़ को फ़ाश कर दोगे।

बावनवाँ परिच्छेद

क्रिया—शीलता

१. जिनमें काम करने की शक्ति है, बस, वही सच्चे अमीर हैं और जिनके अन्दर वह शक्ति नहीं है क्या वे सचमुच ही अपनी चीज़ों के मालिक हैं ?

२. काम करने की शक्ति ही मनुष्य का वास्तविक धन है क्योंकि दौलत हमेशा नहीं रहती, एक न एक दिन चली जायेगी।

३. धन्य है वह पुरुष जो काम करने से कभी पीछे नहीं हटता ! भाग्य-लक्ष्मी उसके घर की राह पूछती हुई जाती है।

४. पौधे को सींचने के लिये जो पानी डाला जाता है, उसीसे उसके फूल के सौन्दर्य का पता लग जाता है; ठीक इसी तरह आदमी का उत्साह, उसकी भाग्य-शीलता का पैमाना है।

५. जोशीले आदमी शिकस्त खाकर कभी पीछे नहीं हटते, हाथी के जिस्म में जब दूर तक तीर घुस जाता है, तब वह और भी मजबूती के साथ ज़मीन पर अपने पैरों को जमाता है।

६. अनन्त उत्साह—बस यही तो शक्ति है; जिनमें उत्साह नहीं है, वे और कुछ नहीं, केवल काठ के पुतले हैं। अन्तर केवल इतना ही है कि उनका शरीर मनुष्यों का सा है।

७. आलस्य में दरिद्रता का वास है, मगर जो आलस्य नहीं करता, उसके परिश्रम में कमला बसती है।

८. टालमटूल, विस्मृति, सुस्ती और निद्रा—ये चार उन लोगों के खुशी मनाने के बजड़े हैं कि जिनके भाग्य में नष्ट होना बदा है।

९. अगर भाग्य किसी को धोखा दे जाय तो इसमें कोई लज्जा नहीं, लेकिन वह अगर जान-बूझ कर, काम से जी चुराकर, हाथ पर हाथ रखकर बैठा रहे तो यह बड़े ही शर्म की बात है।

१०. जो राजा आलस्य को नहीं जानता, वह त्रिविक्रम – वामन के पैरों से नापी हुई समस्त पृथ्वी को अपनी छत्रछाया के नीचे ले आयेगा।

तिरपनवाँ परिच्छेद

मुसीबत के वक़्त बेखौफ़ी

१. जब तुम पर कोई मुसीबत आ पड़े तो तुम हँसते हुए उसका मुक़ाबला करो। क्योंकि मनुष्य को आपत्ति का सामना करने के लिये, सहायता देने में मुस्क्यान से बढ़कर और कोई चीज़ नहीं है।

२. अनिश्चितमना पुरुष भी मन को एकाग्र करके जब सामना करने को खड़ा होता है तो आपत्तियों का लहराता हुआ सागर भी दब कर बैठ जाता है।

३. आपत्तियों को जो आपत्ति नहीं समझते, वे आपत्तियों को ही आपत्ति में डालकर वापस भेज देते हैं।

४. भैंसे की तरह हर एक मुसीबत का सामना करने के लिये जो जी तोड़कर कोशिश करने को तय्यार है; उसके सामने विघ्न-बाधा आयेंगे, मगर निराश होकर, अपना सा मुँह लेकर, वापस चले जायँगे।

५. आपत्तियों की एक समस्त सेना को अपने विरुद्ध सुसज्जित खड़ा देखकर भी, जिसका मन बैठ नहीं जाता, बाधाओं को उसके पास आने में खुद बाधा होती है।

६. सौभाग्य के समय जो खुशी नहीं मनाते क्या वे कभी इस किस्म की शिकायत करते फिरेंगे कि हाय, हम नष्ट हो गये!

७. बुद्धिमान लोग जानते हैं कि यह जिस्म तो मुसीबतों का निशाना है–तख्त-ए-मश्क है; और इसलिये जब उन पर कोई आफ़त आ पड़ती है तो वे उसकी कुछ पर्वाह नहीं करते।

८. देखो, जो आदमी ऐशो-आराम को पसन्द नहीं करता और जो जानता है कि आपत्तियाँ भी सृष्टि-नियम के अन्तर्गत हैं; वह बाधा पड़ने पर, कभी परेशान नहीं होता।

९ सफलता के समय जो हर्ष में मग्न नहीं होता, असफलता के समय उसे दुःख नहीं भोगना पड़ता।

१०. देखो, जो मनुष्य परिश्रम के दुःख, दबाव और आवेग को सच्चा सुख समझता है, उसके दुश्मन भी उसकी प्रशंसा करते हैं।

द्वितीय खण्ड

राज-तन्त्र

चौपनवाँ परिच्छेद

मन्त्री

१. देखो, जो मनुष्य महत्वपूर्ण उद्योगों को सफलतापूर्वक सम्पादन करने के मार्गों और साधनों को जानता है और उनको आरम्भ करने के समुचित समय को पहिचानता है, सलाह देने के लिये के वही योग्य पुरुष है।

२. स्वाध्याय, दृढ़-निश्चय, पौरुष, कुलीनता और प्रजा की भलाई के निमित्त सप्रेम चेष्टा—ये मन्त्री के पाँच गुण हैं।

३. जिसमें दुश्मनों के अन्दर फूट डालने की शक्ति है, जो वर्तमान मित्रता के सम्बन्धों को बनाये रख सकता है और जो लोग दुश्मन बन गये हैं उनको फिर से मिलाने की सामर्थ्य जिसमें है—बस वही योग्य मंत्री है।

४. उचित उद्योगों को पसन्द करने और उनको कार्यरुप में परिणत करने के साधनों को चुनने की लियाक़त तथा सम्मति देते समय निश्चयात्मक स्पष्टता—ये परामर्शदाता के आवश्यक गुण हैं।

५. देखो, जो नियमों को जानता है और जो ज्ञान में भरपूर है, जो समझ-बूझ कर बात करता है और जो मौक़े-महल को पहिचानता है—बस—वही मन्त्री तुम्हारे लायक़ है।

६. जो पुस्तकों के ज्ञान द्वारा अपनी स्वाभाविक बुद्धि की अभिवृद्धि कर लेते हैं, उनके लिये कौनसी बात इतनी मुश्किल है जो उनकी समझ में न आ सके।

७. पुस्तक-ज्ञान में यद्यपि तुम सुदक्ष हो फिर भी तुम्हें चाहिये कि तुम अनुभव-जन्य ज्ञान प्राप्त करो और उसके अनुसार व्यवहार करो।

८. सम्भव है कि राजा मूर्ख हो और पग २ पर उसके काम में अड़चनें डाले, मगर फिर भी मन्त्री का कर्त्तव्य है कि वह सदा वही राह उसे दिखावे कि जो फ़ायदेमन्द, ठीक और मुनासिब हो।

९. देखो, जो मन्त्री, मंत्रणा-गृह में बैठ कर, अपने राजा का सर्वनाश करने की युक्ति सोचता है, वह सात करोड़ दुश्मनों से भी अधिक भयङ्कर है।

१०. अनिश्चयी पुरुष सोंच कर ठीक तरक़ीब निकाल भी लें, मगर उस पर अमल करते समय वे डगमगायेंगे और अपने मन्सूबों को कभी पूरा न कर सकेंगे।

पचपनवाँ परिच्छेद

वाक्-पटुता

१. वाक्-शक्ति निःसन्देह एक नियामत है; क्योंकि यह अन्य नियामतों का अंश नहीं बल्कि स्वयमेव एक निराली नियामत है।

२. जीवन * और मृत्यु जिह्वा के वश में हैं; इसलिये ध्यान रक्खो कि तुम्हारे मुँह से कोई अनुचित बात न निकले।

३. देखो, जो वक्तृता मित्रों को और भी घनिष्ठता के सूत्र में आबद्ध करती और दुश्मनों को भी अपनी ओर आकर्षित करती है, बस वही यथार्थ वक्तृता है।

४. हर एक बात को ठीक तरह से तौल कर देखो और फिर जो उचित हो वही बोलो; धर्म की वृद्धि और लाभ की दृष्टि से इससे बढ़कर उपयोगी बात तुम्हारे हक़ में और कोई नहीं है।

५. तुम ऐसी वक्तृता दो कि जिसे दूसरी कोई वक्तृता चुप न कर सके।

---

* भलाई—बुराई; सम्पत्ति-विपत्ति।

६. ऐसी वक्तृता देना कि जो श्रोताओं के दिलों को तस्ख़ीर कर ले और दूसरों की वक्तृता के अर्थ को फ़ौरन् ही समझ जाना—यह पक्के राजनीतिज्ञ का कर्त्तव्य है।

७. देखो, जो आदमी सुवक्ता है और जो गड़बड़ाना या डरना नहीं जानता, विवाद में उसको हरा देना किसी के लिये सम्भव नहीं है।

८. जिसकी वक्तृता परिमार्जित और विश्वासोत्पादक भाषा से सुसज्जित होती है—सारा संसार उसके इशारे पर नाचेगा।

९. जो लोग अपने मन की बात थोड़े से, चुने हुए, शब्दों में कहना नहीं जानते, वास्तव में उन्हीं को अधिक बोलने की लत होती है।

१०. देखो, जो लोग अपने प्राप्त किये हुए ज्ञान को समझा कर दूसरों को नहीं बता सकते, वे उस फूल के समान हैं जो खिलता है मगर सुगन्ध नहीं देता।

छप्पनवाँ परिच्छेद ।

शुभाचरण

१. मित्रता द्वारा मनुष्य को सफलता मिलती है; किन्तु आचरण की पवित्रता उसकी प्रत्येक इच्छा को पूर्ण कर देती है।

२. उन कामों से सदा विमुख रहो कि जिनसे न तो सुकीर्ति मिलती है, न लाभ होता है।

३. जो लोग संसार में रह कर उन्नति करना चाहते हैं उन्हें ऐसे कार्यों से सदा दूर रहना चाहिये जिनसे कीर्ति में वट्टा लगने की सम्भावना हो।

४. भले आदमी जिन वातों को बुरा वतलाते हैं, मनुष्यों को चाहिये अपने को जन्म देने वाली माता को वचाने के लिये भी वे उन कामों को न करें।

५. अधर्म द्वारा एकत्र की हुई सम्पत्ति की अपेक्षा तो सदाचारी पुरुप की दरिद्रता कहीं अच्छी है।

६. जिन कामों में असफलता अवश्यम्भावी है, उन सब से दूर रहना और बाधा-विघ्नों से डर

कर अपने कर्त्तव्य से विचलित न होना—ये दो बुद्धिमानों के मुख्य पथ-प्रदर्शक सिद्धान्त समझे जाते हैं।

७. मनुष्य जिस बात को चाहता है उसको वह प्राप्त कर सकता है और वह भी उसी तरह से जिस तरह कि वह चाहता है बशर्तें कि वह अपनी पूरी शक्ति और पूरे दिल से उसको चाहता हो।

८. सूरत देख कर किसी आदमी को हेय मत समझो क्योंकि दुनिया में ऐसे भी आदमी हैं जो एक बड़े भारी दौड़ते हुए रथ की धुरी की कीली के समान हैं।

९. लोगों को रुला कर जो सम्पत्ति इकट्ठी की जाती है, वह क्रन्दन-ध्वनि के साथ ही विदा हो जाती है; मगर जो धर्म द्वारा सञ्चित की जाती है, वह बीच में क्षीण हो जाने पर भी अन्त में खूब फलती-फूलती है।

१०. धोखा देकर दगाबाजी के साथ धन जमा करना बस ऐसा ही है जैसा कि मिट्टी के बने हुए कच्चे घड़े में पानी भर कर रखना।

सत्तावनवाँ परिच्छेद

कार्य-सञ्चालन

१. किसी निश्चय पर पहुँचना यही विचार का उद्देश्य है; और जब किसी बात का निश्चय हो गया तब उसको कार्य में परिणित करने में देर करना भूल है।

२, जिन बातों को आराम के साथ फ़ुर्सत से करना चाहिये उनको तो तुम खूब सोच विचार कर करो; लेकिन जिन बातों पर फ़ौरन ही अमल करने की ज़रूरत है, उनको एक क्षण भर के लिये भी न उठा रक्खो।

३. यदि परिस्थिति अनुकूल हो तो सीधे अपने लक्ष्य की ओर चलो; किन्तु यदि परिस्थति अनु-कूल न हो तो उस मार्ग का अनुसरण करो जिसमें सबसे कम बाधा आने की सम्भावना हो।

४. अधूरा काम और अपराजित शत्रु ये दोनों बिना बुझी आग की चिनगारियों के समान हैं; वे मौका पा कर बढ़ जायेंगे और उस ला-पर्वाह आदमी को आ दबोचेंगे।

५. प्रत्येक कार्य को करते समय पाँच बातों का खूब ध्यान रक्खो, अर्थात्—उपस्थित साधन, औजार, कार्य का स्वरूप, समुचित समय और कार्य करने के उपयुक्त स्थान ।

६. काम करने में कितना परिश्रम पड़ेगा, मार्ग में कितनी बाधाएँ आयेंगी और फिर कितने लाभ की आशा है इन बातों को पहले सोच कर तब किसी काम को हाथ में लो ।

७. किसी भी काम में सफलता प्राप्त करने का यही मार्ग है कि जो मनुष्य उस काम में दक्ष है उससे उस काम का रहस्य मालूम कर लेना चाहिये ।

८. लोग एक हाथी के द्वारा दूसरे हाथी को फँसाते हैं; ठीक इसी तरह एक काम को दूसरे काम के सम्पादन करने का ज़रिया बना लेना चाहिये ।

९. मित्रों को पारितोषिक देने से भी अधिक शीघ्रता के साथ दुश्मनों को शान्त करना चाहिये ।

१०. दुर्बलों को सदा ख़तरे की हालत में नहीं रहना चाहिये, बल्कि जब मौका मिले तब उन्हें बलवान के साथ मित्रता कर लेनी चाहिये ।

अठावनवाँ परिच्छेद

राज-दूत

१. एक मेहरबान दिल, आला खान्दान और राजाओं को खुश करने वाले तरीक़े—यह सब राजपूतों की खूबियाँ हैं ।

२. प्रेम-मय प्रकृति, सुतीक्ष्ण बुद्धि और वाक्पटुता—ये तीनों बातें राजदूत के लिये अनिवार्य हैं।

३. जो मनुष्य राजाओं के समक्ष अपने स्वामी को लाभ पहुँचाने वाले शब्दों को बोलने का भार अपने सिर लेता है, उसे विद्वानों में विद्वान्—सर्वश्रेष्ठ विद्वान होना चाहिये ।

४. जिसमें बुद्धि और ज्ञान है और जिसका चेहरा शान्दार और रोबीला है, उसी को राजदूतत्व के काम पर जाना चाहिये ।

५. संक्षिप्त वक्तृता, वाणी की मधुरता और चतुरतापूर्वक हर तरह की अप्रिय भाषा का निराकरण करना; ये ही साधन हैं जिनके द्वारा राज-दूत अपने स्वामी को लाभ पहुँचायेगा ।

६. विद्वत्ता, प्रभावोत्पादक वक्तृता और निर्भीकता और किस मौके पर क्या करना चाहिये

यह बताने वाली सुसंयत प्रत्युत्पन्नमति (हाज़िर जवाबी)—ये सब राजदूत के आवश्यक गुण हैं।

७. वही सब से योग्य राजदूत है कि जिसके पास समुचित स्थान और समय को पहचानने वाली आँख है, जो अपने कर्त्तव्य को जानता है और जो बोलने से पहिले अपने शब्दों को जाँच लेता है।

८. जो मनुष्य दूतत्व के काम पर भेजा जाय वह दृढ़-प्रतिज्ञ, पवित्र-हृदय और चित्ताकर्षक स्वभाव वाला होना चाहिये।*

९. देखो, जो दृढ़-प्रतिज्ञ पुरुष अपने मुख से हीन और अयोग्य वचन कभी नहीं निकलने देता; विदेशी दरबारों में राजाओं के पैग़ाम सुनाने के लिये वही योग्य पुरुष है।

१०. मौत का सामना होने पर भी सच्चा राजदूत अपने कर्त्तव्य से विचलित नहीं होगा बल्कि अपने मालिक का काम बनाने की पूरी कोशिश करेगा।

---

* पहिले सात पदों में ऐसे राजदूतों का वर्णन है, जिनको अपनी ज़िम्मेवारी पर काम करने का अधिकार है। आख़िरी तीन पदों में उन दूतों का वर्णन है जो राजाओं के पैग़ाम ले जाने वाले होते हैं।

उनसठवाँ परिच्छेद

राजाओं के समक्ष कैसा वर्ताव होना चाहिये

१. जो कोई राजाओं के साथ रहना चाहता है उसको चाहिये कि वह उस आदमी के समान व्यवहार करे जो आग के सामने बैठ कर तापता है; उसको न तो अति समीप जाना चाहिये न अति दूर।

२. राजा जिन चीज़ों को चाहता है उनकी लालसा न रखना—यही उसकी स्थायी कृपा प्राप्त करने और उसके द्वारा समृद्धिशाली बनने का मूल-मन्त्र है।

३. यदि तुम राजा की नाराज़ी में पड़ना नहीं चाहते तो तुमको चाहिये कि हर तरह के गम्भीर दोषों से सदा पाक साफ़ रहो, क्योंकि यदि एकबार सन्देह पैदा हो गया तो फिर उसे दूर करना असम्भव हो जाता है।

४. बड़े लोगों के सामने काना-फूंसी न करो और न किसी दूसरे के साथ हँसो या मुस्कुराओ जब कि वे नज़दीक हों।

५. छिप कर कोई बात सुनने की कोशिश न करो और जो बात तुम्हें नहीं बताई गई है उसका पता लगाने की चेष्टा भी न करो; जब तुम्हें बताया जाय तभी उस भेद को जानो।

६. राजा का मिजाज़ इस वक्त कैसा है, इस बात को समझ लो और क्या मौक़ा है इस बात को भी देख लो, तब ऐसे शब्द बोलो जिनसे वह प्रसन्न हो।

७. राजा के सामने उन्हीं बातों का ज़िक्र करो जिनसे वह प्रसन्न हो; मगर जिन बातों से कुछ लाभ नहीं है—जो बातें वेकार हैं—राजा के पूछने पर भी उनका ज़िक्र न करो *।

८. चूंकि वह नवयुवक है और तुम्हारा सम्बन्धी अथवा रिश्तेदार है इसलिये तुम उसको तुच्छ मत समझो, बल्कि उसके अन्दर जो ज्योति † विराजमान है, उसके सामने भय मानकर रहो।

९. देखो, जिनकी दृष्टि निर्मल और निर्द्वन्द्व है, वे यह समझ कर कि हम राजा के कृपा-पात्र हैं कभी कोई ऐसा काम नहीं करते जिससे राजा असन्तुष्ट हो।

१०. जो मनुष्य राजा की घनिष्ठता और मित्रता पर भरोसा रख कर अयोग्य काम कर बैठते हैं, वे नष्ट हो जाते हैं।

---

* परिमेल अलहर कहता है कि उन्हीं बातों का ज़िक्र करो जो लाभदायक हों और जिनसे राजा प्रसन्न हो।

† मूल ग्रन्थ में जिसका प्रयोग है, उसका यह भी अर्थ हो सकता है—वह दिव्य ज्योति जो राजा के सो जाने पर भी प्रजा की रक्षा करती है।

साठवां परिच्छेद

मुखाकृति से मनोभाव समझना

१. देखो, जो आदमी ज़ुबान से कहने से पहले ही दिल की बात जान लेता है वह सारे संसार के लिये भूषण स्वरूप है।

२. दिल में जो बात है, उसको यक़ीनी तौर पर मालूम कर लेने वाले मनुष्य को देवता समझो।

३. जो लोग किसी आदमी की सूरत देख कर ही उसकी बात भाँप जाते हैं, चाहे जिस तरह हो, उनको तुम ज़रूर अपना सलाहकार बनाओ।

४. जो लोग बिना कहे ही मन की बात समझ लेते हैं, उनकी सूरत शक्ल भी वैसी ही हो सकती है जैसी कि न समझ सकने वाले लोगों की होती है; मगर उन लोगों का दर्जा ही अलहदा है।

५. ज्ञानेन्द्रियों के मध्य आँख का क्या स्थान हो सकता है अगर वह एक ही नज़र में दिल में जो बात है उसको जान नहीं सकती?

६. जिस तरह बिल्लौरी पत्थर अपना रङ्ग बदल कर पासवाली चीज़ का रङ्ग धारण करता है, ठीक इसी तरह चेहरे का भाव भी बदल जाता है और दिल में जो बात होती है उसी को प्रकट करने लगता है।

७. चेहरे से बढ़ कर भावपूर्ण चीज़ और कौन सी है? क्योंकि दिल चाहे नाराज़ हो या खुश सब से पहले चेहरा ही इस बात को प्रकट करता है।

८. यदि तुम्हें ऐसा आदमी मिल जाय जो बिना कहे ही दिल की बात समझ सकता हो, तो, बस, इतना काफ़ी है कि तुम उसकी तरफ़ एक नज़र देख भर लो; तुम्हारी सब इच्छाएँ पूर्ण हो जायँगी।

९. यदि ऐसे लोग हों जो उसके हाव भाव और तौरौ-तरीक़ को समझ सकें तो अकेली आँख ही यह बात बतला सकती है कि हृदय में घृणा है अथवा प्रेम।

१०. जो लोग अपने को होशियार और कामिल कहते हैं, उनका पैमाना और कुछ नहीं, केवल उनकी आँखें ही हैं।

इकसठवाँ परिच्छेद

श्रोताओं के समक्ष

१. ऐ शब्दों का मूल्य जानने वाले पवित्र पुरुषो ! पहिले अपने श्रोताओं की मानसिक स्थिति को समझ लो और फिर उपस्थित जन-समूह की अवस्था के अनुसार अपनी वक्तृता देना आरम्भ करो ।

२. बुद्धिमान और विद्वान लोगों की सभा में ही ज्ञान और विद्वत्ता की चर्चा करो; मगर मूर्खों को उनकी मूर्खता का ख़याल रख कर ही जवाब दो ।

३. धन्य है, वह आत्म-संयम जो मनुष्य को बुज़ुर्गों की सभा में आगे बढ़ कर नेतृत्व ग्रहण करने से मना करता है ! यह एक ऐसा गुण है जो अन्य गुणों से भी अधिक समुज्वल है ।

४. बुद्धिमान लोगों के सामने असमर्थ और असफल सिद्ध होना धर्म-मार्ग से पतित हो जाने के समान है ।

५. विद्वान पुरुष की विद्वत्ता अपने पूर्ण तेज के साथ सुसम्पन्न गुणियों की सभा में ही चमकती है ।

६.   बुद्धिमान लोगों के सामने उपदेश पूर्ण व्याख्यान देना जीवित पौदों को पानी देने के समान है।

७.   ऐ अपनी वक्तृता से विद्वानों को प्रसन्न करने की इच्छा रखने वाले लोगां! देखो, कभी भूल कर भी मूर्खों के सामने व्याख्यान न देना॥

८.   रणक्षेत्र में खड़े हो कर बहादुरी के साथ मौत का सामना करने वाले लोग ,तो बहुत हैं, मगर ऐसे लोग बहुत ही थोड़े हैं जो बिना काँपे हुए जनता के सामने, रङ्गमञ्च पर खड़े हो सकें।

९.   तुमने जो ज्ञान प्राप्त किया है, उसको विद्वानों के सामने खोल कर रक्खो और जो बात तुम्हें मालूम नहीं है, वह उन लोगों से सीख लो जो उसमें दक्ष हों।

१०.   देखो, जो लोग विद्वानों की सभा में अपनी बात को लोगों के दिल में नहीं बिठा सकते वे हर तरह का ज्ञान रखने पर भी बिल्कुल निकम्मे हैं।

॥ क्योंकि अयोग्यों को उपदेश देना कीचड़ में अमृत फेंकने के समान है।

बासठवाँ परिच्छेद

देश

१. वह महान् देश है जो फ़सल की पैदावार में कभी नहीं चूकता और जो ऋषि-मुनियों तथा धार्मिक धनिकों का निवास स्थान हो।

२. वही महान् देश है जो धन की अधिकता से लोगों को अपनी ओर आकर्षित करता है और जिसमें खूब पैदावार होती है फिर भी हर तरह की वबाई—बीमारी से पाक रहता है।

३. उस महान् जाति की ओर देखो; उस पर कितने ही बोझ के ऊपर बोझ पड़ें, वह उन्हें दिलेरी के साथ बर्दाश्त करेगी और साथ ही साथ अपने सारे कर अदा कर देगी।

४. वही देश महान् है जो अकाल और महामारी से आज़ाद है और जो शत्रुओं के आक्रमणों से सुरक्षित है।

५. वही महान् जाति है जो परस्पर युद्ध करने वाले दलों में विभक्त नहीं है, जो हत्यारे क्रान्तिकारियों से पाक है और जिसके अन्दर जाति का सर्वनाश करने वाला कोई देश-द्रोही नहीं है।

६. देखो, जो मुल्क दुश्मनों के हाथों कभी तबाह और बर्बाद नहीं हुआ; और अगर कभी हो भी जाये, तब भी जिसकी पैदावार में ज़रा भी कमी न आये—वह देश तमाम दुनिया के मुल्कों में हीरा समझा जायेगा।

७. पृथ्वी तल के ऊपर बहने वाला जल, ज़मीन के अन्दर बहने वाला जल, वर्षा-जल, उपयुक्त स्थानापन्न पर्वत और सुदृढ़ दुर्ग—ये चीज़ें प्रत्येक देश के लिये अनिवार्य हैं।

८. धन-सम्पत्ति, ज़मीन की ज़रख़ेज़ी, खुशहाली, बीमारियों से आज़ादी और दुश्मनों के हमलों से हिफ़ाज़त—ये पाँच बातें राज्य के लिये आभूषण स्वरूप हैं।

९. वही अकेला देश कहलाने योग्य है जहाँ मनुष्यों के परिश्रम किये बिना ही खूब पैदावार होती है; जिसमें आदमियों के परिश्रम करने पर ही पैदावार हो, वह इस पद का अधिकारी नहीं है।

१०. अगर किसी देश में यह सब नियामतें मौजूद भी हों फिर भी वह किसी मतलब का नहीं, अगर उस देश का राजा ठीक न हो।

तिरसठवाँ परिच्छेद

दुर्ग

१. दुर्बलों के लिये, जिन्हें केवल अपने बचाव की ही चिन्ता होती है, दुर्ग बहुत ही उपयोगी होते हैं; मगर बलवान और शक्तिशाली के लिये भी वे कम उपयोगी नहीं होते।

२. जल-प्राकार, रेगिस्तान, पर्वत और सघन-बन—ये सब नाना प्रकार के रक्षणात्मक प्रतिबन्ध हैं।

३. ऊँचाई, मोटाई, मजबूती और अजेयत्व-ये चार गुण हैं, जो निर्माण-कला की दृष्टि से क़िलों के लिये ज़रूरी हैं।

४. वह गढ़ सब से उत्तम है जिसमें कमज़ोरी तो बहुत थोड़ी जगहों पर हो, मगर उसके साथ ही वह खूब विस्तृत हो; और जो लोग उसे लेना चाहें, उनके आक्रमणों को रोक दुश्मनों के बल को तोड़ने की शक्ति रखता हो।

५. अजेयत्व, दुर्ग-सैन्य के लिए रक्षणात्मक सुविधा और दुर्ग के अन्दर रसद और सामान की बहुतायत-यह सब दुर्ग के लिये आवश्यक बातें हैं।

६. वही सच्चा क़िला है, जिसमें हर तरह का सामान पर्याप्त परिमाण में मौजूद है। और जो ऐसे लोगों की संरक्षकता में हो कि जो क़िले को बचाने के लिए वीरता पूर्वक लड़ें।

७. बेशक वह सच्चा क़िला है कि जिसे न तो कोई घेरा डाल कर जीत सके, और न अचानक हमला करके, और न कोई जिसे सुरङ्ग लगा कर ही तोड़ सके।

८. निःसन्देह वह वास्तविक दुर्ग है जो क़िले की सेना को, घेरा डालने वाले शत्रुओं को हराने के योग्य बना देता है। यद्यपि वह उसको लेने की चाहे कितनी ही कोशिश क्यों न करें।

९. निःसन्देह वह दुर्ग है जो नाना प्रकार के साधनों द्वारा अजेय बन गया है और जो अपने संरक्षकों को इस योग्य बनता है कि वे दुश्मनों को किले की सुदूर सीमा पर ही मार कर गिरा सकें।

१०. मगर क़िला चाहे कितना ही मज़बूत क्यों न हो, वह किसी काम का नहीं, अगर संरक्षक लोग वक्त पर फ़ुर्ती से काम न लें।

चौसठवाँ परिच्छेद

धनोपार्जन

१. अप्रसिद्ध और वेक़द्रोक़ीमत लोगों को प्रतिष्ठित बनाने में जितना धन समर्थ है, उतना और कोई पदार्थ नहीं।

२. ग़रीबों का सभी अपमान करते हैं, मगर धन-धान्य-पूर्ण मनुष्य की सभी जगह अभ्यर्थना होती है।

३. वह अविश्रान्त ज्योति जिसे लोग धन कहते हैं; अपने स्वामी के लिये सभी अन्धकारमय * स्थानों को ज्योत्स्नापूर्ण बना देती है।

४. देखो, जो धन-पाप-रहित निष्कलङ्क रूप से प्राप्त किया जाता है, उससे धर्म और आनन्द का स्रोत वह निकलता है।

५. जो धन, दया और ममता से रहित है, उसकी तुम कभी इच्छा मत करो और उसको कभी अपने हाथ से छुओ भी मत।

---

* अन्धकार के लिए जो शब्द मूल में हैं, उसके अर्थ बुराई और दुश्मनी के भी हो सकते हैं।

६. ज़ब्तशुदा और मतरूक जायदादें, लगान और मालगुजारी और युद्ध में प्राप्त किया हुआ माल—ये सब चीजें राजा के कोप में वृद्धि करती हैं।

७. *दयार्द्रता, जो प्रेम की सन्तति है, उसका पालन-पोषण करने के लिए सम्पत्ति-रूपिणी दयालु-हृदया धाय की आवश्यकता है।

८. देखो, धनवान् आदमी जब अपने हाथ में काम लेता है तो वह उस मनुष्य के समान मालूम होता है कि जो एक पहाड़ की चोटी पर से हाथियों की लड़ाई देखता है।†

९. धन इकट्ठा करो; क्योंकि शत्रु का गर्व चूर करने के लिये, उससे बढ़ कर दूसरा हथियार नहीं है।

१०. देखो, जिसने बहुत सा धन जमा कर लिया है, शेष दो पुरुषार्थ—धर्म और काम—उसके करतल-गत हैं।

---

* हृदय में दया के भाव का विकास करने के लिये सम्पत्ति की आवश्यकता है। सम्पत्ति द्वारा दूसरों की सेवा की जा सकती है।

† क्योंकि बिना किसी भय और चिन्ता के वह अपना काम कर सकता है।

पैंसठवाँ परिच्छेद

सेना के लक्षण

१. एक सुसङ्गठित और बलवती सेना जो ख़तरे से भयभीत नहीं होती है, राजा के वशवर्ती पदार्थों में सर्व-श्रेष्ठ है।

२. बेहिसाब आक्रमणों के होते हुए, भयङ्कर निराशा-जनक स्थिति को रक्षा, मँजे हुए बहादुर सिपाही ही अपने अटल निश्चय के द्वारा कर सकते हैं।

३. यदि वे समुद्र की तरह गरजते भी हैं तो इससे क्या हुआ? काले नाग की एक ही फुफकार में चूहों का सारा झुण्ड का झुण्ड विलीन हो जायगा।

४. जो सेना हारना जानती ही नहीं और जो कभी भ्रष्ट नहीं की जा सकती और जिसने बहुत से अवसरों पर बहादुरी दिखाई है—वास्तव में वही सेना नाम की अधिकारिणी है।

५. वास्तव में सेना का नाम उसी को शोभा देता है कि जो बहादुरी के साथ यमराज का भी मुक़ाबिला कर सके जब कि वह अपनी पूर्ण प्रचण्डता के साथ सामने आवे।

६. बहादुरी, प्रतिष्ठा, एक साफ़ दिमाग़ और पिछले ज़माने की लड़ाइयों का इतिहास—ये चार बातें सेना की रक्षा करने के लिये कवच स्वरूप हैं।

७. जो सच्ची सेना है वह सदा दुश्मन की तलाश में रहती है क्योंकि उसको पूर्ण विश्वास है कि जब कोई दुश्मन लड़ाई करेगा तो वह उसे अवश्य जीत लेगी।

८. सेना में जब मुस्तैदी और एकाएक प्रचण्ड आक्रमण करने की शक्ति नहीं होती तब शानो शौक़त और जाहोजलाल उस कमजोरी को केवल पूरा भर कर देते हैं।

९. जो सेना संख्या में कम नहीं है और जिस को तनख्वाह न पाने के कारण भूखों नहीं मरना पड़ता, वह सेना विजयी होगी।

१०. सिपाहियों की कमी न होने पर भी कोई फौज नहीं बन सकती जब तक कि उसका सञ्चालन करने के लिये सरदार न हो।

छाछठवाँ परिच्छेद

वीर योद्धा का आत्म-गौरव

१. अरे ए दुश्मनो ! मेरे मालिक के सामने, युद्ध में, खड़े न होओ क्योंकि बहुत से आदमियों ने उसे युद्ध के लिये ललकारा था मगर आज वे सब पत्थर* की कब्रों के नीचे पड़े हुए हैं।

२. हाथी के ऊपर चलाया गया भाला अगर चूक भी जाये तब भी उसमें अधिक गौरव † है बनिस्बत उस तीर के जो खरगोश पर चलाया जाये और उसके लग भी जाये।

३. वह प्रचण्ड साहस जो प्रबल आक्रमण करता है, उसी को लोग वीरता कहते हैं, लेकिन उसकी शान उस दिलेराना फैयाज़ी में है कि जो अधःपतित शत्रु के प्रति दिखायी जाती है।

४. सिपाही ने अपना भाला हाथी के ऊपर चला दिया और वह दूसरे भाले की तलाश में जा रहा था, इतने ही में उसने एक भाला

---

* तामिल देश में बहादुरों की चिताओं और क़ब्रों के ऊपर कीर्ति स्तंभ के रूप में एक पत्थर गाड़ दिया जाता था।

† Higher aims are in themselves more valuable even if unfulfilled than lower ones quite attained—Goethe.

अपने शरीर में घुसा हुआ देखा और ज्योंही उसने उसे बाहर निकाला वह खुशी से मुस्कुरा उठा।

५. वीर पुरुष के ऊपर भाला चलाया जाये और उसकी आँख ज़रा सी झपक भर जाये तो क्या यह उसके लिये शर्म की बात नहीं है ?

६. बहादुर आदमी जिन दिनों अपने जिस्म पर गहरे घाव नहीं खाता है, वह समझता है कि वे दिन व्यर्थ नष्ट हो गये।

७. देखो, जो लोग अपनी जान की पर्वाह नहीं करते मगर पृथ्वी भर में फैली हुई कीर्ति की कामना करते हैं; उनके पाँव के कड़े भी आँखों को आल्हादकारक होते हैं।

८. देखो, जो बहादुर लोग युद्धक्षेत्र में मरने से नहीं डरते वे अपने सरदार के सख्ती करने पर भी सैनिक नियमों को नहीं भूलते।

९. अपने हाथ में लिये हुए काम को सम्पादन करने के उद्योग में जो लोग अपनी जान गँवा देते हैं उनको दोष देने का किसको अधिकार है ?

१०. अगर कोई आदमी ऐसी मौत मर सके कि जिसे देख कर उसके सरदार की आँख से आँसू निकल पड़ें तो भीख माँग कर और खुशामद करके भी ऐसी मौत को हाँसिल करना चाहिये।

सड़सठवाँ परिच्छेद

मित्रता

१. दुनिया में ऐसी कौन सी वस्तु है जिसका हासिल करना इतना मुश्किल है जितना कि दोस्ती का ? और दुश्मनों से रक्षा करने के लिये मित्रता के समान और कौन सा कवच है ?

२. योग्य पुरुषों की मित्रता बढ़ती हुई चन्द्र-कला के समान है, मगर वेवकूफों की दोस्ती घटते हुए चाँद के समान है।

३. योग्य पुरुषों की मित्रता दिव्य ग्रन्थों के स्वाध्याय के समान है; जितनी ही उनके साथ तुम्हारी घनिष्टता होती जायगी उतनी ही अधिक खूबियाँ तुम्हें उनके अन्दर दिखायी पड़ने लगेंगी।

४. मित्रता का उद्देश्य हँसी-दिल्लगी करना नहीं है; वल्कि जब कोई बहक कर कुमार्ग में जाने लगे तो उसको रोकना और उसकी भर्त्स-ना करना ही मित्रता का लक्ष्य है।

५. वार वार मिलना और सदा साथ रहना इतना जरूरी नहीं है; यह तो हृदयों की एकता ही है कि जो मित्रता के सम्बन्ध को स्थिर और सुदृढ़ बनाती है।

६. हँसी-दिल्लगी करने वाली गोष्ठी का नाम मित्रता नहीं है; मित्रता तो वास्तव में वह प्रेम है जो हृदय को आल्हादित करता है।

७. जो मनुष्य तुम्हें बुराई से बचाता है, नेक राह पर चलाता है और जो मुसीबत के वक्त तुम्हारा साथ देता है, बस वही मित्र है।

८. देखो, उस आदमी का हाथ कि जिसके कपड़े हवा से उड़ गये हैं, कितनी तेज़ी के साथ फिर से अपने बदन को ढंकने के लिये दौड़ता है! वही सच्चे मित्र का आदर्श है जो मुसीबत में पड़े हुए आदमी की सहायता के लिये दौड़ कर जाता है।

९. मित्रता का दरबार कहाँ पर लगता है? बस वहीं पर कि जहाँ दो दिलों के बीच में अनन्य प्रेम और पूर्ण एकता है और जहाँ दोनों मिल कर हर एक तरह से एक दूसरे को उच्च और उन्नत बनाने की चेष्टा करें।

१०. जिस दोस्ती का हिसाब लगाया जा सकता है उसमें एक तरह का कँगलापन होता है। वह चाहे कितने ही गर्वपूर्वक कहे—मैं उसको इतना प्यार करता हूँ और वह मुझे इतना चाहता है।

अड़सठवाँ परिच्छेद

मित्रता के लिये योग्यता की परीक्षा

१. इससे बढ़ कर बुरी बात और कोई नहीं है कि बिना परीक्षा किये किसी के साथ दोस्ती कर ली जाय क्योंकि एक बार मित्रता हो जाने पर सहृदय पुरुष फिर उसे छोड़ नहीं सकता।

२. देखो, जो पुरुष पहिले आदमियों की जाँच किये बिना ही उनको मित्र बना लेता है वह अपने सर पर ऐसी आपत्तियों को बुलाता है कि जो सिर्फ उसकी :मौत के साथ ही समाप्त होंगी।

३. जिस मनुष्य को तुम अपना दोस्त बनाना चाहते हो उसके कुल का, उसके गुण-दोषों का, कौन २ लोग उसके साथी हैं और किन किन के साथ उसका सम्बन्ध है इन सब बातों का अच्छी तरह से विचार करलो और उसके बाद यदि वह योग्य हो तो उसे दोस्त बना लो।

४. देखो, जिस पुरुष का जन्म उच्च कुल में हुआ है और जो बेइज्जती से डरता है उसके साथ आवश्यकता पड़े तो मूल्य देकर भी दोस्ती करनी चाहिये।

५. ऐसे लोगों को खोजो और उनके साथ दोस्ती करो कि जो सन्मार्ग को जानते हैं और तुम्हारे बहक जाने पर तुम्हें झिड़क कर तुम्हारी भर्त्सना कर सकते हैं।

६. आपत्ति में भी एक गुण है—वह एक पैमाना है जिससे तुम अपने मित्रों को नाप सकते हो।

७. निःसन्देह मनुष्य का लाभ इसी में है कि वह मूर्खों से मित्रता न करे।

८. ऐसे विचारों को मत आने दो जिनसे मन निरुत्साह और उदास हो और न ऐसे लोगों से दोस्ती करो कि जो दुःख पड़ते ही तुम्हारा साथ छोड़ देंगे।

९. जो लोग मुसीबत के वक्त धोखा दे जाते हैं उनकी मित्रता की याद मौत के वक्त भी दिल में जलन पैदा करेगी।

१०. पाकोसाफ़ लोगों के साथ बड़े शौक़ से दोस्ती करो; मगर जो लोग तुम्हारे अयोग्य हैं उनका साथ छोड़ दो, इसके लिये चाहे तुम्हें कुछ भेंट भी देना पड़े।

उनहत्तरवां परिच्छेद

झूठी मित्रता

१. उन कमबख्त नालायकों से होशियार रहो कि जो अपने लाभ के लिये तुम्हारे पैरों पर पड़ने के लियं तय्यार हैं; मगर जब तुमसे उनका कुछ मतलब न निकलेगा तो वे तुम्हें छोड़ देंगे। भला ऐसों की दोस्ती रहे या न रहे इस से क्या आता जाता है।

२. कुछ आदमी उस अक्खड़ घोड़े की तरह होते हैं कि जो युद्ध-क्षेत्र में अपने सवार को गिरा कर भाग जाता है। ऐसे लोगों से दोस्ती रखने की वनिस्वत तो अकेले रहना हज़ार दर्जे वेहतर है।

३. बुद्धिमानों की दुश्मनी भी वेवकूफ़ों की दोस्ती से हज़ार दर्जे वेहतर है; और खुशामदी और मतलबी लोगों की दोस्ती से दुश्मनों की घृणा सैकड़ों दर्जे अच्छी है।

४. देखो जो लोग यह सोचते हैं कि हमें उस दोस्त से कितना मिलेगा वे उसी दर्जे के लोग हैं कि जिनमें चोरों और वाजारू औरतों की गिनती है।

५. खबरदार उन लोगों से ज़रा भी दोस्ती न करना कि जो कमरे में वैठ कर तो मीठी मीठी

बातें करते हैं मगर बाहर आम मजलिस में निन्दा करते हैं।

६. जो लोग ऊपर से तो दोस्ती दिखाते हैं मगर दिल में दुश्मनी रखते हैं उनकी मित्रता औरत के दिल की तरह जरासी देर में बदल जायगी।

७. उन मक्कार बदमाशों से डरते रहो कि जो आदमी के सामने ऊपरी दिल से हँसते हैं मगर अन्दर ही अन्दर दिल में जानी दुश्मनी रखते हैं।

८. दुश्मन अगर नम्रता-पूर्वक झुककर बात-चीत करे तो भी उसका विश्वास न करो, क्योंकि कमान जब झुकती है तो वह और कुछ नहीं, (खराबी की ही पेशीनगोई करती है) अनिष्ट की ही भविष्यवाणी करती है।

९. दुश्मन अगर हाथ जोड़े तब भी उसका विश्वास न करो। मुमकिन है कि उसके हाथों में कोई हथियार छुपा हो, और न तुम उसके आँसू बहाने पर ही कुछ यकीन लाओ।

१०. अगर दुश्मन तुमसे दोस्ती करना चाहे और यदि तुम अपने दुश्मन से अभी खुला वैर नहीं कर सकते हो तो उसके सामने जाहिरी दोस्ती का बर्ताव करो मगर दिल से उसे सदा दूर रक्खो।

सत्तरवाँ परिच्छेद

मूर्खता

१. क्या तुम जानना चाहते हो कि मूर्खता किसे कहते हैं ? जो चीज़ लाभदायक है, उस को फेंक देना और हानिकारक पदार्थ को पकड़ रखना—बस यही मूर्खता है।

२. मूर्ख मनुष्य अपने कर्त्तव्य को भूल जाता है, ज़ुबान से वाहियात और सख्त बातें निकालता है, उसे किसी तरह की शर्म और हया का खयाल नहीं होता और न किसी नेक बात को पसन्द करता है।

३. एक आदमी खूब पढ़ा-लिखा और चतुर है और दूसरों का गुरु है; मगर फिर भी वह इन्द्रिय-लिप्सा का दास बना रहता है—उससे बढ़ कर मूर्ख और कोई नहीं है।

४. अगर मूर्ख को इत्तफ़ाक़ से बहुत सी दौलत मिल जाय तो ऐरे ग़ैरे अजनबी लोग ही मज़े उड़ायेंगे मगर उसके बन्धु-बान्धव तो बिचारे भूखों ही मरेंगे।

५. योग्य पुरुषों की सभा में किसी मूर्ख मनुष्य का जाना ठीक वैसा ही है जैसा कि साफ़-सुथरे पलङ्ग के ऊपर मैला पैर रख देना ।

६. अक़ल की ग़रीबी ही वास्तविक ग़रीबी है। और तरह की ग़रीबी को दुनियाँ ग़रीबी ही नहीं समझती ।

७. मूर्ख आदमी खुद अपने सर पर जो मुसीबतें लाता है, उसके दुश्मनों के लिये भी उसको वैसी मुसीबतें पहुँचाना मुश्किल होगा ।

८. क्या तुम यह जानना चाहते हो कि मन्द-बुद्धि किसे कहते हैं ? बस, उसी अहङ्कारी को जो अपने मन में कहता है कि मैं अक़्लमन्द हूँ ।

९. मूर्ख आदमी अगर अपने नङ्गे बदन को ढकता है तो इससे क्या फ़ायदा, जब कि उस के मन के ऐब ढँके हुए नहीं हैं ?

१०. देखो, जो आदमी न तो खुद भला-बुरा पहचानता है और न दूसरों की सलाह मानता है, वह अपनी ज़िन्दगी भर अपने साथियों के लिये दुःखदायी बना रहता है ।

इकहत्तरवाँ परिच्छेद

शत्रुओं के साथ व्यवहार

१. उस हत्यारी चीज़ को कि जिसे लोग दुश्मनी कहते हैं, जान-बूझ कर कभी न छेड़ना चाहिये; चाहे वह मज़ाक ही के लिये क्यों न हो।

२. तुम उन लोगों को भले ही शत्रु बना लो कि जिनका हथियार तीर-कमान है, मगर उन लोगों को कभी मत छेड़ना जिनका हथियार ज़ुबान है।

३. देखो, जिस राजा के पास सहायक तो कोई भी नहीं है, मगर जो ढेर के ढेर दुश्मनों को युद्ध के लिये ललकारता है, वह पागल से भी बढ़ कर पागल है।

४. जिस राजा में शत्रुओं को मित्र बना लेने की कुशलता है उसकी शक्ति सदा स्थिर रहेगी।

५. यदि तुमको बिना किसी सहायक के अकेले, दो शत्रुओं से लड़ना पड़े तो उन दो में से किसी एक को अपनी ओर मिला लेने की चेष्टा करो।

६. तुमने अपने पड़ोसी को दोस्त या दुश्मन बनाने का कुछ भी निश्चय कर रक्खा हो, बाह्य आक्रमण होने पर उसे कुछ भी न बनाओ; बस यों ही छोड़ दो।

७. अपनी मुश्किलों का हाल उन लोगों पर ज़ाहिर न करो कि जो अभी तक अनजान हैं और न अपनी कमज़ोरियाँ अपने दुश्मनों को मालूम होने दो।

८. एक चतुरता-पूर्ण युक्ति सोचो, अपने साधनों को सुदृढ़ और सुसंगठित बनाओ और अपनी रक्षा का पूर्ण प्रबन्ध कर लो; यदि तुम यह सब कर लोगे तो तुम्हारे शत्रुओं का गर्व चूर्ण हो कर धूल में मिलते कुछ देर न लगेगी।

९. काँटेदार वृक्षों को छोटेपन में ही गिरा देना चाहिये क्योंकि जब वे बड़े हो जाँयगे तो स्वयं ही उस हाथ को ज़ख्मी बना डालेंगे कि जो उन्हें काटने की कोशिश करेगा।

१०. जो लोग अपना अपमान करने वालों का गर्व चूर्ण नहीं करते वे बहुत समय तक नहीं रहेंगे।

बहत्तरवाँ परिच्छेद

घर का भेदी

१. कुञ्ज-वन और पानी के फ़व्वारे भी कुछ आनन्द नहीं देते, अगर उनसे बीमारी पैदा होती है; इसी तरह अपने रिश्तेदार भी जघन्य हो उठते हैं जब कि वे उसका सर्वनाश करना चाहते हैं।

२. उस शत्रु से डरने की जरुरत नहीं है कि जो नङ्गी तलवार की तरह है मगर उस शत्रु से सावधान रहो कि जो मित्र बन कर तुम्हारे पास आता है।

३. अपने गुप्त शत्रु से सदा होशियार रहो; क्योंकि मुसीबत के वक्त वह तुम्हें कुम्हार की डोर की तरह, बड़ी सफ़ाई से, काट डालेगा।

४. अगर तुम्हारा कोई ऐसा शत्रु है कि जो मित्र के रुप में घूमता-फिरता है तो वह शीघ्र ही तुम्हारे साथियों में फूट के बीज बो देगा और तुम्हारे सिर पर सैकड़ों बलाएँ ला डालेगा।

५. जब कोई भाई-बिरादर तुम्हारे प्रतिकूल विद्रोह करे तो वह तुम पर ढेर की ढेर आपत्तियाँ ला सकता है, यहाँ तक कि उससे खुद तुम्हारी जान के लाले पड़ जायेंगे।

६. जब किसी राजा के दरबार में दग़ाबाज़ी प्रवेश कर जाती है तो फिर यह असम्भव है कि एक न एक दिन वह उसका शिकार न हो जाय।

७. जिस घर में फूट पड़ी हुई है, वह उस बर्तन के समान है, जिसमें ढकन लगा हुआ है; यद्यपि वे दोनों देखने में एक से मालूम होते मगर फिर भी वे एक चीज़ कभी नहीं हो सकते।

८. देखो, जिस घर में फूट है वह रेती से रेते हुए लोहे की तरह रेज़े रेज़े होकर धूल में मिल जायगा।

९. जिस घर में पारस्परिक कलह है, सर्वनाश उसके सर पर लटक रहा है। फिर वह कलह चाहे तिल में पड़ी हुई दरार की तरह ही छोटी क्यों न हो।

१०. देखो, जो मनुष्य ऐसे आदमी के साथ बेत-कल्लुफ़ी से पेश आता है कि जो दिल ही दिल में उससे नफ़रत करता है, वह उस मनुष्य के समान है जो काले नाग को साथी बनाकर एक ही झोंपड़े में रहता है।

तिहत्तरवाँ परिच्छेद

महान् पुरुषों के प्रति दुर्व्यवहार न करना

१. जो आदमी अपनी भलाई चाहता है, उसे सबसे ज्यादा खबरदारी इस बात की रखनी चाहिये कि वह होशियारी के साथ महान् पुरुषों का अपमान करने से अपने को बचाये रक्खे।

२. अगर कोई आदमी महात्माओं का निरादर करेगा तो उनकी शक्ति से उसके सर पर अनन्त आपत्तियाँ आ टूटेंगी।

३. क्या तुम अपना सर्वनाश कराना चाहते हो? तो जाओ, किसी की नेक सलाह पर ध्यान न दो और जा कर उन लोगों के साथ छेड़खानी करो कि जो जब चाहें तुम्हारा नाश करने की शक्ति रखते हैं।

४. देखो, दुर्बल मनुष्य, जो बलवान और शक्ति-शाली पुरुषों का अपमान करता है, वह मानो यमराज को अपने पास आने का इशारा करता है।

५. देखो, जो लोग शक्ति-शाली महान् पुरुषों और राजाओं के क्रोध को उभारते हैं, वे चाहे कहीं जायँ कभी, खुशहाल न होंगे।

६. जलती हुई आग में पड़े हुए लोग चाहे भले ही बच जायँ, मगर उन लोगों की रक्षा का कोई उपाय नहीं है कि जो शक्ति-शाली लोगों के प्रति दुर्व्यवहार करते हैं।

७. यदि आत्मिक-शक्ति से परिपूर्ण ऋषिगण तुम पर क्रुद्ध हैं, तो विविध प्रकार के आनन्दोच्छ्वास से उल्लसित तुम्हारा जीवन और समस्त ऐश्वर्य से पूर्ण तुम्हारा धन कहाँ होगा ?

८. देखो, जिन राजाओं का अस्तित्व अनन्त रूप से स्थायी भित्ति पर स्थापित है, वे भी अपने समस्त वन्धु-वान्धवों सहित नष्ट हो जायँगे, यदि पर्वत के समान शक्ति-शाली महर्षिगण उनके सर्वनाश की कामना भर करें।

९. और तो और देवेन्द्र भी अपने स्थान से भ्रष्ट हो जाय और अपना प्रभुत्व गंवा बैठे यदि पवित्र प्रतिज्ञा वाले सन्त लोग क्रोध भरी दृष्टि से उसकी ओर देखें।*

१०. यदि महान् आत्मिक-शक्ति रखने वाले लोग रुष्ट हो जायँ तो वे मनुष्य भी नहीं बच सकते कि जो मजबूत से मजबूत आश्रय के ऊपर निर्भर हैं।

---

* नहुष की कथा।

चौहत्तरवाँ परिच्छेद

स्त्री का शासन

१. जो लोग अपनी स्त्रियों के श्री चरणों की अर्चना में ही लगे रहते हैं वे कभी महत्व प्राप्त नहीं कर सकते हैं और जो महान् कार्य करने की उच्चाशा रखते हैं वे ऐसे वाहियात प्रेम के फन्दे में नहीं फँसते।

२. जो आदमी वेतरह अपनी स्त्री के मोह के फेर में पड़ा हुआ है, वह अपनी समृद्धिशाली अवस्था में भी लोगों में वदनाम हो जायगा और शर्म से उसे अपना मुँह छिपाना पड़ेगा।

३. वह नामर्द जो अपनी स्त्री के सामने झुक कर चलता है, लायक लोगों के सामने अपना मुँह दिखाने में हमेशा शरमावेगा।

४. शोक है उस मुक्ति-विहीन अभागे पर जो अपनी स्त्री के सामने काँपता है। उसके गुणों की कभी कोई कद्र न करेगा।

५. जो आदमी अपनी स्त्री से डरता है वह लायक लोगों की सेवा करने का भी साहस नहीं कर सकता।

६. जो लोग अपनी स्त्रियों के नाजुक बाजुओं से खौफ़ खाते हैं, वे अगर फ़रिश्तों की तरह रहें तब भी कोई उनकी इज़्ज़त न करेगा।

७. देखो, जो आदमी चोली-राज्य का आधिपत्य स्वीकार करता है; एक लजिली कन्या में भी उससे अधिक गौरव होता है।

८. देखो, जो लोग अपनी स्त्री के कहने में चलते हैं, वे अपने मित्रों की आवश्यकताओं को भी पूर्ण न कर सकेंगे और न उनसे कोई नेक काम ही हो सकेगा।

९. देखो; जो मनुष्य स्त्री-राज्य का शासन स्वीकार करते हैं, उन्हें न तो धर्म मिलेगा, और न धन; न उन्हें मुहब्बत का मज़ा चखना ही नसीब होगा।

१०. देखो, जिन लोगों के विचार महत्वपूर्ण कार्यों में रत हैं और जो सौभाग्य-लक्ष्मी के कृपा-पात्र हैं, वे अपनी स्त्रियों के मोह-जाल में फँसने की बेवकूफ़ी नहीं करते।

पचहत्तरवाँ परिच्छेद

शराब से घृणा

१. देखो, जिन लोगों को शराब पीने की लत पड़ी हुई है, उनके दुश्मन उनसे कभी न डरेंगे और जो कुछ शानोशौकत उन्होंने हासिल कर ली है, वह भी जाती रहेगी।

२. कोई भी शराब न पिये; लेकिन अगर कोई पीना ही चाहे तो उन लोगों को पीने दो कि जिन्हें लायक लोगों से इज्ज़त हासिल करने की पर्वाह नहीं है।

३. जो आदमी नशे में मदहोश है, उसकी सूरत ख़ुद उसकी माँ को बुरी मालूम होती है। भला, शरीफ़ आदमियों को फिर उसकी सूरत कैसी लगेगी?

४. देखो, जिन लोगों को मदिरा-पान की घृणित आदत पड़ी हुई है, सुन्दरी लज्जा उनसे अपना मुँह फेर लेती है।

५. यह तो हद दर्जे की बेवक़ूफ़ी और नालायकी है कि अपना रुपया खर्च करें और बदले में सिर्फ़ बेहोशी और बदहवासी हाथ लगे।

६. देखो, जो लोग हर रोज़ उस ज़हर को पीते हैं कि जिसे ताड़ी या शराब कहते हैं, वे मानो महा निद्रा में अभिभूत हैं । उनमें और मुर्दों में कोई फ़र्क नहीं है ।

७. देखो, जो लोग खुफ़िया तौर पर नशा पीते हैं और अपने समय को बदहवासी और बेहोशी की दशा में गुज़ारते हैं, उनके पड़ोसी जल्दी ही इस बात को जान जायेंगे और उनसे सख्त नफ़रत करेंगे ।

८. शराबी आदमी बेकार यह कह कर बहाना-साज़ी न करे कि मैं तो जानता ही नहीं, नशा किसे कहते हैं; क्योंकि ऐसा करने से वह सिर्फ़ अपनी उस बदकारी के साथ झूठ बोलने के पाप को शामिल करने का भागी होगा ।

९. जो शख्स नशे में मस्त हुए आदमी को नसीहत करता है, वह उस आदमी की तरह है जो पानी में डूबे हुए आदमी को मशाल लेकर ढूँढता है ।

१०. जो आदमी होशोहवास की हालत में किसी शराबी की दुर्गति देखता है तो क्या वह खुद उससे कुछ अन्दाजा नहीं लगा सकता है कि जब वह नशे में होता है तो उसकी हालत कैसी होती होगी !

छिहत्तरवाँ परिच्छेद

वेश्या

१. देखो, जो स्त्रियाँ प्रेम के लिये नहीं वल्कि धन के लोभ से किसी पुरुष की कामना करती हैं, उनकी चापलूसी की वातें सुनने से दुःख ही दुःख होता है।

२. देखो, जो दुष्ट स्त्रियाँ मधु-मयी वाणी वोलती हैं मगर जिनका ध्यान अपने मुनाफ़े पर रहता है, उनकी चाल-ढाल को ख़याल में रख कर उनसे सदा दूर रहो।

३. वेश्या जव अपने प्रेमी को छाती से लगाती है तो वह जाहिरा यह दिखाती है कि वह उससे प्रेम करती है; मगर दिल में तो उसे ऐसा अनुभव होता है जैसे कोई वेगारी अन्धेरे कमरे में किसी अजनवी के मुर्दा जिस्म को छूने से अनुभव करता है।*

४. देखो, जिन लोगों के मन का झुकाव पवित्र कार्यों की ओर है, वे असती स्त्रियों के स्पर्श से अपने शरीर को कलङ्कित नहीं करते।

---

* पैसा देकर किसी मनुष्य से लाश उठवाई जाये तो वह मनुष्य उस लाश को अन्धेरे में छूकर वीभत्स घृणा का अनुभव करेगा।

५. जिन लोगों की बुद्धि निर्मल है और जिनमें अगाध ज्ञान है वे उन औरतों के स्पर्श से अपने को अपवित्र नहीं करते कि जिनका सौन्दर्य और लावण्य सब लोगों के लिये खुला है।

६. जिनको अपनी भलाई का ख़याल है, वे उन शोख़ और आवारा औरतों का हाथ नहीं छूते कि जो अपनी नापाक खुबसूरती को बेचती फिरती हैं।

७. जो ओछी तबियत के आदमी हैं, वही उन स्त्रियों को खोजेंगे कि जो सिर्फ़ शरीर से आलिङ्गन करती हैं जब कि उनका दिल दूसरी जगह रहता है।

८. जिनमें सोचने-समझने की बुद्धि नहीं है, उनके लिये चालाक कामिनियों का आलिङ्गन ही अप्सराओं की मोहिनी के समान है।

९. खूब साज-सिंगार किये और बनी-ठनी फ़ाहिशा औरत के नाज़ुक बाज़ू एक तरह की गन्दी—दोज़ख़ी—नाली है जिसमें घृणित मूर्ख लोग जाकर अपने को डुबा देते हैं।

१०. दो दिलोंवाली औरत, शराब और जुआ, ये उन लोगों की खुशी के सामान हैं कि जिन्हें भाग्य-लक्ष्मी छोड़ देती है।

सतहत्तरवां परिच्छेद

औषधि

१. वात से शुरू करके जिन तीन गुणों * का वर्णन ऋषियों ने किया है, उनमें से कोई भी यदि अपनी सीमा से घट या बढ़ जायगा तो वह बीमारी का कारण होगा।

२. शरीर के लिये औषधि की कोई ज़रूरत ही न हो यदि खाया हुआ खाना हज़म हो जाने बाद नया खाना खाया जाय।

३. खाना हमेशा एतदाल के साथ खाओ और खाये हुए खाने के अच्छी तरह से पच जाने के बाद भोजन करो—अपनी दीर्घायु होने का बस यही मार्ग है।

४. जब तक तुम्हारा खाना हज़म न हो जाय और तुम्हें खूब तेज़ भूख न लगे तब तक ठहरे रहो और उसके बाद एतदाल के साथ वह खाना खाओ जो तुम्हारी प्रकृति के अनुकूल है।

---

* वात, पित्त, कफ।

५. अगर तुम एतदाल के साथ ऐसा खाना खाओ कि जो तुम्हारी रुचि के अनुकूल है तो तुम्हारे जिस्म में किसी किस्म की तकलीफ़ पैदा न होगी।

६. जिस तरह तन्दुरुस्ती उस आदमी को ढूँढती है जो पेट खाली होने पर ही खाना खाता है; ठीक इसी तरह बीमारी उसको ढूँढती फिरती है जो हद से ज्यादा खाता है।

७. देखो, जो आदमी बेवक़ूफ़ी करके अपनी जठराग्नि से परे खूब ठूँस ठूँस कर खाना खाता है, उसकी बीमारियों की कोई सीमा न रहेगी।

८. रोग, उसकी उत्पत्ति और उसके निदान का पहले विचार करलो और तब होशियारी के साथ उसको दूर करने में लग जाओ।

९. वैद्य को चाहिये कि वह बीमार, बीमारी और मौसम के बाबत ग़ौर कर ले और तब उसके बाद दवा शुरू करे।

१०. रोगी, वैद्य, औषधि और अत्तार—इन चार पर सारे इलाज का दारोमदार है और उनमें से हर एक के फिर चार चार गुण हैं।

तृतीय खण्ड

विविध बातें

अठहत्तरवाँ परिच्छेद
कुलीनता

१. रास्तबाज़ी और हयादारी स्वभावत: उन्हीं लोगों में होती है, जो अच्छे कुल में जन्म लेते हैं।

२. सदाचार, सत्य-प्रियता और सलज्जाता इन तीन चीज़ों से कुलीन पुरुष कभी पद-स्खलित नहीं होते।

३. सच्चे कुलीन सज्जन में ये चार गुण पाये जाते हैं—हँस-मुख चेहरा, उदार हाथ, मृदु-भाषण और स्निग्ध निरभिमान।

४. कुलीन पुरुष को करोड़ों रुपये मिलें तब भी वह अपने नाम को कलङ्कित न होने देगा।

५. उन प्राचीन कुलों के वंशजों की ओर देखो! अपने ऐश्वर्य के क्षीण हो जाने पर भी वे अपनी उदारता को नहीं छोड़ते।

६. देखो, जो लोग अपने कुल के प्रतिष्ठित आचारों को पवित्र रखना चाहते हैं, वे न तो कभी धोखेबाज़ी से काम लेंगे और न कुकर्म करने पर उतारु होंगे।

७. प्रतिष्ठित कुल में उत्पन्न हुए मनुष्य के दोष पर चन्द्रमा के कलङ्क की तरह विशेष रूप से सब की नज़र पड़ती है।

८. अच्छे कुल में उत्पन्न हुए मनुष्य की जुबान से यदि फूहड़ और वाहियात बातें निकलेंगी तो लोग उसके जन्म के विषय तक में शङ्का करने लगेंगे।

९. ज़मीन की ख़ासियत का पता उसमें उगने वाले पौधे से लगता है; ठीक इसी तरह, मनुष्य के मुख से जो शब्द निकलते हैं उनसे उसके कुल का हाल मालूम हो जाता है।

१०. अगर तुम नेकी और सद्‌गुणों के इच्छुक हो तो तुम को चाहिये कि सलज्जता के भाव का उपार्जन करो। अगर तुम अपने वंश को सम्मानित बनाना चाहते हो तो तुम सब लोगों के साथ इज्जत से पेश आओ।

उन्नासिवाँ परिच्छेद

प्रतिष्ठा

१. उन बातों से सदा दूर रहो कि जो तुम्हें नीचे गिरा देंगी; चाहे वे प्राण-रक्षा के लिये अनिवार्य रूप ही से, आवश्यक क्यों न हों।

२. देखो, जो लोग अपने पीछे यशस्वी नाम छोड़ जाना चाहते हैं, वे अपनी शान बढ़ाने के लिये भी वह काम न करेंगे कि जो उचित नहीं है।

३. समृद्ध अवस्था में तो नम्रता और विनय की विस्फूर्ति करो; लेकिन हीन स्थिति के समय मान-मर्यादा का पूरा ख़याल रक्खो।

४. देखो, जिन लोगों ने अपने प्रतिष्ठित नाम को दूषित बना डाला है, वे बालों की उन लटों के समान हैं कि जो काट कर फेंक दी गयी हों।

५. पर्वत के समान शान्दार लोग भी बहुत ही क्षुद्र दिखायी पड़ने लगेंगे, अगर वे कोई दुष्कर्म करेंगे; फ़िर चाहे वह कर्म घुंघची के समान ही छोटा क्यों न हो।

६. न तो इससे यशोवृद्धि ही होती है और न स्वर्ग-प्राप्ति; फिर मनुष्य ऐसे आदमियों की खुशामद करके क्यों जीना चाहता है कि जो उससे घृणा करते हैं।

७. यह कहीं बेहतर है कि मनुष्य बिना किसी हीला-हुज्जत के फ़ौरन् ही अपनी किस्मत के लिखे को भोगने के लिये तय्यार हो जाय बनिस्बत इसके कि वह अपने से घृणा करने वाले लोगों के पाँव पड़ कर अपना जीवन व्यतीत करे।

८. अरे! यह खाल क्या ऐसी चीज़ है कि लोग अपनी इज्जत बेंच कर भी उसे बचाये रखना चाहते हैं।

९. चमरी-मृग अपने प्राण त्याग देता है जब कि उसके बाल काट लिये जाते हैं; कुछ मनुष्य भी ऐसे ही मानी होते हैं और वे जब अपनी आबरू नहीं रख सकते तो अपनी जीवन-लीला का अन्त कर डालते हैं।

१०. जो आबरूदार आदमी अपनी नेकनामी के चले जाने के बाद जीवित रहना नहीं चाहता, सारा संसार हाथ जोड़ कर उसकी सुयश-मयी वेदी पर भक्ति की भेंट चढ़ाता है।

अस्सीवाँ परिच्छेद

महत्व

१. महान् कार्यों के सम्पादन करने की आकांक्षा को ही लोग महत्व के नाम से पुकारते हैं और ओछापन उस भावना का नाम है जो कहती है कि मैं उसके बिना ही रहूँगी।

२. पैदाइश तो सब लोगों की एक ही तरह की होती है मगर उनकी प्रसिद्धि में विभिन्नता होती है क्योंकि उनका जीवन दूसरी ही तरह का होता है।

३. शरीफ़ज़ादे होने पर भी वे अगर शरीफ़ नहीं हैं तो शरीफ़ नहीं कहला सकते और जन्म से नीच होने पर भी जो नीच नहीं हैं वे नीच नहीं हो सकते।

४. रमणी के सतीत्व की तरह महत्व की रक्षा भी केवल आत्म-शुद्धि—आत्मा के प्रति सरल, निष्कपट व्यवहार—द्वारा ही की जा सकती है।

५. महान् पुरुषों में समुचित साधनों को उपयोग में लाने और ऐसे कार्यों के सम्पादन करने

की शक्ति होती है कि जो दूसरों के लिये असाध्य होते हैं।

६. छोटे आदमियों के खमीर में ही यह बात नहीं होती है कि वे महान् पुरुषों की प्रतिष्ठा करें और उनकी कृपा दृष्टि और अनुग्रह को प्राप्त करने की चेष्टा करें।

७. ओछी तबियत के आदमियों के हाथ यदि कहीं कोई सम्पत्ति लग जाय तो फिर उनके इतराने की कोई सीमा ही न रहेगी।

८. महत्ता सर्वदा ही विनयशील होती है और दिखावा पसन्द नहीं करती मगर क्षुद्रता सारे संसार में अपने गुणों का ढिंढोरा पीटती फिरती है।

९. महत्ता सर्वथा ही अपने छोटों के साथ ही नर्मी और मेहरबानी से पेश आती है, मगर क्षुद्रता को तो बस घमण्ड की पुतली ही समझो।

१०. बड़प्पन हमेशा ही दूसरों की कमजोरियों पर पर्दा डालना चाहता है; मगर ओछापन दूसरों की ऐबजोई के सिवा और कुछ करना ही नहीं जानता।

इक्यासिवाँ परिच्छेद

योग्यता

१. देखो; जो लोग अपने कर्त्तव्य को जानते हैं और अपने अन्दर योग्यता पैदा करनी चाहते हैं, उनकी दृष्टि में सभी नेक काम कर्त्तव्य स्वरूप हैं

२. लायक़ लोगों के आचरण की सुन्दरता ही उनकी वास्तविक सुन्दरता है; शारीरिक सुन्दरता उनकी सुन्दरता में किसी तरह की अभिवृद्धि नहीं करती है।

३. सार्वजनिक प्रेम, सलज्जता का भाव, सब के प्रति सद्व्यवहार, दूसरे के दोषों की पर्दा-दारी और सत्य-प्रियता—ये पाँच स्तम्भ हैं जिन पर शुभ आचरण की इमारत का अस्तित्व होता है।

४. सन्त लोगों का धर्म है अहिंसा; मगर योग्य पुरुषों का धर्म इस बात में है कि वे दूसरों की निन्दा करने से परहेज़ करें।

५. ख़ाकसारी—नम्रता-बलवानों की शक्ति है और वह दुश्मनों के मुक़ाबिले में लायक़ लोगों के लिये कवच का काम भी देती है।

६. योग्यता की कसौटी क्या है? यही की दूसरों के अन्दर जो बुज़ुर्गी और फ़ज़ीलत है उसका इक़बाल कर लिया जाय; फिर चाहे वह फ़ज़ीलत ऐसे ही लोगों में क्यों न हो कि जो और सब बातों में हर तरह अपने से कम दर्जे के हों। *

७. लायक़ आदमी की बुज़ुर्गी किस काम की अगर वह अपने को नुक़सान पहुँचाने वालों के साथ भी नेकी का सलूक नहीं करता है।

८. निर्धनता, मनुष्य के लिये बेइज़्ज़ती का कारण नहीं हो सकती अगर उस के पास वह सम्पत्ति मौजूद हो कि जिसे लोग सदाचार कहते हैं।

९. देखो, जो लोग कभी सन्मार्ग से विचलित नहीं होते चाहे प्रलय-काल में और सब कुछ बदल कर इधर की दुनिया उधर हो जाय; वे तो मानों योग्यता के समुद्र की सीमा ही हैं।

१०. निःसन्देह खुद धरती भी मनुष्यों के जीवन का बोझ न सम्हाल सकेगी अगर लायक़ लोग अपनी लायक़ी छोड़ कर पतित हो जायँगे।

---

* अपने से कम दर्जे के लोगों से हार हो जाने पर उसे मान लेना, यह योग्यता की कसौटी है

बयासिवाँ परिच्छेद

खुश इख़्लाकी

१. कहते हैं, मिलनसारी प्रायः उन लोगों में पायी जाती है कि जो खुले दिल से सब लोगों का स्वागत करते हैं।

२ खुश इख़्लाकी, मेहरबानी और नेक तरबियत इन दो सिफ़तों के मजमुए से पैदा होती है।

३. शारीरिक आकृति और सूरत शक्ल से आदमियों में सादृश्य नहीं होता है; बल्कि सच्चा सादृश्य तो आचार-विचार की अभिन्नता पर निर्भर है।

४. देखो, जो लोग न्याय-निष्ठा और धर्म-पालन के द्वारा अपना और दूसरों का—सबका—भला करते हैं, दुनियाँ उनके इख़्लाक़ की बड़ी क़द्र करती है।

५. हंसी मजाक में भी कड़वे वचन आदमी के दिल में चुभ जाते हैं, इसलिये शरीफ़ लोग अपने दुश्मनों के साथ भी बद इख़्लाकी से पेश नहीं आते हैं।

६.	सुसंस्कृत मनुष्यों के अस्तित्व के कारण ही दुनिया का कारोबार निर्द्वन्द्व रूप से चल रहा है; इस में कोई शक नहीं कि यदि ये लोग न होते तो यह अक्षुण्य साम्य और स्वारस्य मृतप्राय हो कर धूल में मिल जाता।

७.	जिन लोगों के आचार ठीक नहीं हैं, वे अगर रेती की तरह तेज़ हों तब भी काठ के हथियारों से वेहतर नहीं हैं।

८.	अविनय मनुष्य को शोभा नहीं देता है, चाहे अन्यायी और विपक्षी पुरुष के प्रति ही उसका व्यवहार क्यों न हो।

९.	देखो, जो लोग मुस्कुरा नहीं सकते, उन्हें इस विशाल लम्बे चौड़े संसार में, दिन के समय भी, अन्धकार के सिवा और कुछ दिखायी न देगा।

१०	देखो, वद मिजाज़ आदमी के हाथ में जो दौलत होती है वह उस दूध के समान है जो अशुद्ध, मैले वर्तन में रखने से खराव हो गया हो।

तिरासिवां परिच्छेद

निरूपयोगी धन

१. देखो, जिस आदमी ने अपने घर में ढेर की ढेर दौलत जमा कर रक्खी है मगर उसे उपयोग में नहीं लाता; उस में और मुर्दे में कोई फ़र्क नहीं है क्योंकि वह उस से कोई लाभ नहीं उठाता है।

२. वह कञ्जूस आदमी जो समझता है कि धन ही दुनियाँ में सब कुछ है और इसलिये बिना किसी को कुछ दिये ही उसे जमा करता है; वह अगले जन्म में राक्षस होगा।

३. देखो, जो लोग सदा ही धन के लिये हाय-हाय करते फिरते हैं; मगर यशोपार्जन करने की पर्वा नहीं करते, उनका अस्तित्व पृथ्वी के लिये केवल भार-स्वरूप है।

४. जो मनुष्य अपने पड़ौसियों के प्रेम को प्राप्त करने की चेष्टा नहीं करता, वह मरने के पश्चात् अपने पीछे क्या चीज़ छोड़ जाने की आशा रखता है?

५. देखो, जो लोग न तो दूसरों को देते हैं और न स्वयं ही अपने धन का उपभोग करते हैं वे

अगर करोड़पति भी हों तब भी वास्तव में उन के पास कुछ भी नहीं है।

६. दुनियाँ में ऐसे भी कुछ आदमी हैं जो न तो खुद अपने धन को भोगते हैं और न उदारता पूवक योग्य पुरुषों को प्रदान करते हैं; वे अपनी सम्पत्ति के लिये रोग-स्वरूप हैं।

७. जो मनुष्य हाजतमन्द को दान दे कर उस की हाजत को रफ़ा नहीं करता, उसकी दौलत उस लावण्यमयी ललना के समान है जो अपनी जवानी को एकान्त निर्जन स्थान में व्यर्थ गँवाये देती है।

८. उस आदमी की सम्पत्ति कि जिसे लोग प्यार नहीं करते हैं, गाँव के बीचोबीच किसी विष-वृक्ष के फलने के समान है।

९. धर्माधर्म का ख़याल न रख कर और अपने को भूखों मार कर जो धन जमा किया जाता है वह सिर्फ़ ग़ैरों ही के काम में आता है।

१०. उस धनवान मनुष्य की मुसीबत कि जिस ने दान दे दे कर अपने ख़ज़ाने को ख़ाली कर डाला है, और कुछ नहीं केवल जल बरसाने वाले बादलों के खाली हो जाने के समान है—यह स्थिति अधिक समय तक न रहेगी।

चौरासिवाँ परिच्छेद

लज्जा की भावना

१. लायक़ लोगों का लजाना उन कामों के लिये होता है कि जो उनके अयोग्य होते हैं; इसलिये वह सुन्दरी स्त्रियों के शरमाने से बिलकुल भिन्न है।

२. खाना, कपड़ा और सन्तान सबके लिये एक समान हैं; यह तो लज्जा की भावना है जिससे मनुष्य-मनुष्य का अन्तर प्रकट होता है।*

३. शरीर तो समस्त प्राणों का निवासस्थान है मगर यह सात्विक लज्जा की लालिमा है जिसमें लायक़ी या योग्यता वास करती है।

४. लज्जा की भावना क्या लायक़ लोगों के लिये मणि के समान नहीं है? और जब वह उस भावना से रहित होता है तो उसकी शेखी और ऐंठ क्या देखने वाली आँख को पीड़ा पहुँचाने वाली नहीं होती?

---

* आहार-निद्रा-भय मैथुनञ्च, सामान्यमेतत् पशुभिर्नराणाम्।
धर्मोहितेषामधिको विशेषो, धर्मेण हीनाः पशुभिः समानाः॥

संस्कृत-कवि के अनुसार मनुष्य को पशुओं से श्रेष्ठ बनाने वाला धर्म है। महर्षि तिरुवल्लुवर कहते हैं कि मनुष्य से मनुष्य को श्रेष्ठ बनाने वाली लज्जा की भावना है।

५. देखो, जो लोग दूसरों की बेइज्जती देख कर भी उतने ही लज्जित होते हैं जितने कि खुद अपनी बेइज्ज़ती से, उन्हें तो लोग लज्जा और सङ्कोच की मूर्ति ही समझेंगे।

६. ऐसे साधनों के अलावा कि जिनसे उन्हें लज्जित न होना पड़े अन्य साधनों के द्वारा, लायक़ लोग, राज्य पाने से भी इन्कार कर देंगे।

७. देखो, जिन लोगों में लज्जा की सुकोमल भावना है, वे अपने को बेइज्ज़ती से बचाने के लिये अपनी जान तक दे देंगे और प्राणों पर आ बनने पर भी लज्जा को नहीं त्यागेंगे।

८. अगर कोई आदमी उन बातों से लज्जित नहीं होता है कि जिनसे दूसरों को लज्जा आती है तो उसे देखकर नेकी को भी शरमाना पड़ेगा।

९. कुलाचार को भूल जाने से मनुष्य केवल अपने कुल से ही भ्रष्ट हो जाता है लेकिन जब वह लज्जा को भूल कर बेशर्म हो जाता है, तब सब तरह की नेकियाँ उसे छोड़ देती हैं।

१०. जिन लोगों की आँख का पानी मर गया है, वे मुर्दा हैं; डोरी के द्वारा चलने वाली कठ-पुतलियों की तरह उनमें भी सिर्फ नुमायशी ज़िन्दगी होती है।

पचासीवां परिच्छेद

कुलोन्नति

१. मनुष्य की यह प्रतिज्ञा कि अपने हाथों से मेहनत करने में मैं कभी न थकूंगा, उस के परिवार की उन्नति करने में जितनी सहायक होती है, उतनी और कोई चीज़ नहीं हो सकती।

२. मर्दाना मशक्कत और सही व सालिम अक्ल—इन दोनों की परिपक्व पूर्णता ही परिवार को ऊँचा उठाती है।

३. जब कोई मनुष्य यह कह कर काम करने पर उतारु होता है कि मैं अपने कुल की उन्नति करूँगा तो खुद देवता लोग अपनी अपनी कमर कस कर उस के आगे आगे चलते हैं।

४. देखो, जो लोग अपने खानदान को ऊँचा बनाने में कुछ उठा नहीं रखते, वे इस के लिये यदि कोई सुविस्तृत युक्ति न भी निकालें तब भी उन के हाथ से किये हुए काम में बरकत होगी।

५. देखो; जो आदमी बिना किसी किस्म के अनाचार के अपने कुल को उन्नत बनाता है; सारी दुनिया उस को अपना दोस्त समझेगी।

६. सच्ची मर्दानगी तो इसी में है कि मनुष्य अपने वंश को, जिस में उसने जन्म लिया है, उच्च अवस्था में लाये।

७. जिस तरह युद्ध-क्षेत्र में आक्रमण का प्रकोप दिलेर आदमी के सर पर पड़ता है, ठीक इसी तरह परिवार के पालन-पोषण का भार उन्हीं कन्धों पर पड़ता है कि जो उस के बोझ को सम्भाल सकते हैं।

८. जो लोग अपने कुल की उन्नति करना चाहते हैं, उनके लिये कोई मौसम, वे मौसम नहीं है; लेकिन अगर वे लापरवाही से काम लेंगे और अपनी झूठी शान पर अड़े रहेंगे तो उनके कुटुम्ब को नीचा देखना पड़ेगा।

९. क्या सचमुच उस आदमी का शरीर कि जो अपने परिवार को हर तरह की बला से महफ़ूज़ रखना चाहता है, महज़ मेहनत और मुसीबत के लिये ही बना है ? *

१०. देखो; जिस घर में कोई नेक आदमी उसे सम्भालने वाला नहीं है, आपत्तियाँ उसकी जड़ को काट डालेंगी और वह गिर कर ज़मीन में मिट जायगा।

---

* ऐसे आदमी पर तरह तरह की आपत्तियाँ आती हैं और वह उन्हें प्रसन्नता पूर्वक झेलता है।

छिआसीवाँ परिच्छेद

खेती

१. आदमी जहाँ चाहें, घूमें; मगर आखिरकार अपने भोजन के लिये उन्हें हल का सहारा लेना ही पड़ेगा; इसलिये हर तरह की सख़्ती होने पर भी कृषि सर्वोत्तम उद्यम है।

२. किसान लोग समाज के लिये धुरी के समान हैं; क्योंकि जोतने-खोदने की शक्ति न होने के कारण जो लोग दूसरे काम करने लगते हैं, उन को रोज़ी देने वाले वे ही लोग हैं।

३. जो लोग हल के सहारे जीते हैं, वास्तव में वे ही जीते हैं; और सब लोग तो दूसरों की कमाई हुई रोटी खाते हैं।

४. देखो, जिन लोगों के खेत लहलहाती हुई शस्य की श्यामल छाया के नीचे सोया करते हैं, वे दूसरे राजाओं के छत्रों को अपने राजा के राज-छत्र के सामने झुकता हुआ देखेंगे।

५. देखो, जो लोग खेती कर के रोज़ी कमाते हैं, वे सिर्फ़ यही नहीं कि खुद कभी भीख न मागेंगे, बल्कि वे दूसरे लोगों को, कि जो भीख माँगते हैं, बग़ैर कभी इन्कार किये, दान भी दे सकेंगे।

६. किसान आदमी अगर हाथ पर हाथ रख कर चुपचाप बैठा रहे तो उन लोगों को भी कष्ट हुए विना न रहेगा कि जिन्होंने समस्त वासनाओं का परित्याग कर दिया है।

७. अगर तुम अपने खेत की जमीन को इतना सुखाओ कि एक सेर मिट्टी सूख कर चौथाई औंस रह जाय तो एक मुट्ठी भर खाद की भी जरूरत न होगी और फ़सल की पैदावार खूब होगी।

८. जोतने की बनिस्वत खाद डालने से अधिक फ़ायदा हाता है और जब नराई हो जाती है तो आवपाशी की अपेक्षा खेत की रखवाली अधिक लाभदायक होती है। *

९. अगर कोई भला आदमी खेत देखने नहीं जाता है और अपने घर पर ही बैठा रहता है तो नेक बीवी की तरह उसकी जमीन भी उस से ख़फ़ा हो जायगी।

१०. वह सुन्दरी कि जिसे लोग धरिणी बोलते हैं, अपने मन ही मन हँसा करती है जब कि वह किसी काहिल को यह कह कर रोते हुए देखती है—हाय, मेरे पास खाने को कुछ भी नहीं है!

---

* इसके अर्थ ये हैं कि जोतना, खाद देना, नराना, सींचना और रखाना—ये पाँचों ही बातें अत्यन्त आवश्यक हैं।

सत्तासीवां परिच्छेद

मुफ़लिसी

१. क्या तुम यह जानना चाहते हो कि कङ्गाली से बढ़ कर दुःखदायी चीज़ और क्या है ? तो सुनो, कङ्गाली ही कङ्गाली से बढ़ कर दुःख दायी है।

२. कमबख्त मुफ़लिसी इस जन्म के सुखों की तो दुश्मन है ही, मगर साथ ही साथ दूसरे जन्म के सुखोपभोग की भी घातक है।

३. ललचाती हुई कङ्गाली खान्दानी शान और ज़ुबान की नफ़ासत तक की हत्या कर डालती है।

४. ज़रूरत ऊँचे कुल के आदमियों तक की आन छुड़ा कर उन्हें अत्यन्त निकृष्ट और हीन दासता की भाषा बोलने पर मजबूर करती है।

५. उस एक अभिशाप के नीचे कि जिसे लोग दरिद्रता कहते हैं, हजार तरह की आपत्तियें और बलायें छिपी हुई हैं।

६. ग़रीब आदमी के शब्दों की कोई क़द्रो क़ीमत नहीं होती, चाहे वह कमाल उस्तादी और अचूक ज्ञान के साथ अगाध सत्य की ही विवेचना क्यों न करे।

७. एक तो कङ्गाल हो और फिर धर्म से खाली—ऐसे अभागे मरदूद से तो खुद उसकी माँ का दिल फिर जायेगा कि जिसने उसे नौ महीने पेट में रक्खा।

८. क्या नादारी आज भी मेरा साथ न छोड़ेगी? कल ही तो उसने मुझे अधमरा कर डाला था।*

९. जलते हुए शोलों के बीच में सो जाना भले ही सम्भव हो, मगर ग़रीबी की हालत में आँख का झपकना भी असम्भव है।

१०. † ग़रीब लोग जो अपने जीवन का उत्सर्ग नहीं कर देते हैं तो इस से और कुछ नहीं, सिर्फ़ दूसरों के नमक और चावलों के पानी ‡ की मृत्यु ही होती है।

---

* यह किसी दीन-दुखिया के दुःखार्त शब्द हैं।

† इस पद के अर्थ के विषय में मतभेद हैं। कुछ टीकाकार कहते हैं कि कंगाल आदमी को संसार त्याग देना चाहिये और दूसरों का मत है, उन्हें प्राण त्याग देना चाहिये। मूल में "त्यरवामपि" शब्द है, जिसके अर्थ मृत्यु और त्याग दोनों होते हैं। भावार्थ यह है कि ग़रीब लोगों का जीवन नितान्त निःसार और व्यर्थ है। वह जो कुछ खाते-पीते हैं वह वृथा नष्ट हो जाता है।

‡ मद्रास प्रान्त में वह प्रथा है कि रात में लोग भात को पानी में रख देते हैं। सुबह को उस ठंडे भात और पानी को नमक के साथ खाते हैं। उनका कहना है—यह बड़ा गुणकारी है।

अट्ठासीवां परिच्छेद

भीख माँगने की भीति

१. जो आदमी भीख नहीं माँगता, वह भीख माँगने वाले से करोड़ गुना वेहतर है; फिर वह माँगने वाला चाहे ऐसे ही आदमियों से क्यों न माँगे कि जो वड़े शौक़ और प्रेम से दान देते हैं ।

२. जिसने इस दुनिया को पैदा किया है, अगर उसने यह निश्चय किया था कि मनुष्य भीख माँग कर भी जीवन-निर्वाह करे तो वह दुनिया भर में मारा २ फिरे और नष्ट हो जाये ।

३. उस निर्लज्जता से बढ़ कर निर्लज्जता की वात और कोई नहीं है कि जो यह कहती है कि मैं माँग २ कर अपनी दरिद्रता का अन्त कर डालूँगी ।

४. वलिहारी है उस आन की कि, जो नितान्त कङ्गाली की हालत में भी किसी के सामने हाथ फैलाने की रवादार नहीं होती । अखिल विश्व उस के रहने के लिये वहुत ही छोटा और नाकाफ़ी है ।

५. जो खाना अपने हाथों से मेहनत करके कमाया जाता है, वह पानी की तरह पतला हो,

तब भी उस से बढ़ कर मज़ेदार और कोई चीज़ नहीं हो सकती।

६. तुम चाहे गाय के लिये पानी ही माँगो, फिर भी जिह्वा के लिये याचना-सूचक शब्दों को उच्चारण करने से बढ़ कर अपमान-जनक बात और कोई नहीं।

७. जो लोग मांगते हैं, उन सब से मैं बस एक भिक्षा मांगता हूँ—अगर तुमको मांगना ही है तो उन लोगों से न मांगो कि जो हीला-हवाला करते हैं।

८. याचना का बदनसीब जहाज़ उसी समय टूट कर टुकड़े-टुकड़े हो जायगा कि जिस दम वह हीलासाज़ी की चट्टान से टकरायेगा।

९. भिखारी के भाग्य का ख़याल करके ही दिल कांप उठता है मगर जब वह उन झिड़कियों पर ग़ौर करता है कि जो भिखारी को सहनी पड़ती हैं, तब तो बस वह मर ही जाता है।

१०. मना करने वाले की जान उस वक़्त कहाँ जाकर छिप जाती है कि जब वह "नहीं" कहता है? भिखारी की जान तो झिड़की की आवाज़ सुनते ही तन से निकल जाती है।*

---

* इस विषय पर रहीम का दोहा है—
रहिमन वे नर मर चुके, जे कहुँ माँगन जाहिं।
उन ते पहिले वे मुए, जिन मुख निकसत नाहिं॥

नवासीवाँ परिच्छेद

भ्रष्ट जीवन

१. ये भ्रष्ट और पतित जीव मनुष्यों से कितने मिलते-जुलते हैं, हमने ऐसा पूर्ण सादृश्य कभी नहीं देखा।*

२. शुद्ध अन्तःकरण वाले लोगों से यह हेय जीव कहीं अधिक सुखी हैं, क्योंकि उन्हें अन्तरात्मा की चुटकियों की वेदना नहीं सहनी पड़ती।

३. मर्त्यलोक में रहने वाले नीच लोग भी देवताओं के समान हैं, क्योंकि वे भी सिर्फ़ अपनी ही मर्ज़ी के पावन्द होते हैं।

४. जब कोई दुष्ट मनुष्य ऐसे आदमी से मिलता है जो दुष्टतामें उससे कम है तो वह अपनी वढ़ी हुई वदकरदारियों का वड़े फ़ख्र के साथ ज़िक्र करता है।

५. दुष्ट लोग केवल भय के मारे ही सन्मार्ग पर चलते हैं और या फिर इसलिये कि ऐसा करने से उन्हें कुछ लाभ की आशा होगी।

---

* कवि इन भ्रष्ट लोगों को मनुष्य ही नहीं समझता, इसीलिये इतना सादृश्य देख कर उसे आश्चर्य होता है।

६. नीच लोग तो ढिंढोरे वाले ढोल की तरह होते हैं, क्योंकि उनको जो राज़ की बातें बताई जाती हैं, उनको दूसरे लोगों पर जाहिर किये बिना, उन्हें चैन ही नहीं पड़ता।

७. नीच प्रकृति के आदमी उन लोगों के सिवा कि जो घूँसा मार कर उसका जबड़ा तोड़ सकते हैं, और किसी के आगे भोजन से सने हुए हाथ झटक देने में भी आना-कानी करेंगे।

८. लायक़ लोगों के लिये तो सिर्फ़ एक शब्द ही काफ़ी है, मगर नीच लोग गन्ने की तरह खूब कुटने-पिटने पर ही देने पर राजी होते हैं।

९. दुष्ट मनुष्य ने अपने पड़ोसी को ज़रा खुशहाल और खाते-पीते देखा नहीं कि बस वह फ़ौरन् ही उसके चाल-चलन में दोष निकालने लगता है।

१०. दुष्ट मनुष्य पर जब कोई आपत्ति आती है तो बस उसके लिये एक ही मार्ग खुला होता है, और वह यह कि जितनी जल्द मुमकिन हो, वह अपने को बेच डाले।

लागत मूल्य पर हिन्दी पुस्तकें प्रकाशित करनेवाली
एक मात्र सार्वजनिक संस्था

सस्ता-साहित्य-प्रकाशक मण्डल, अजमेर

उद्देश्य—हिंदी-साहित्य-संसार में उच्च और शुद्ध साहित्य के प्रचार के उद्देश्य से इस मण्डल का जन्म हुआ है। विविध विषयों पर सर्वसाधारण और शिक्षित-समुदाय, स्त्री और बालक सबके लिए उपयोगी, अच्छी और सस्ती पुस्तकें इस मण्डल के द्वारा प्रकाशित होंगी।

विषय—धर्म (रामायण, महाभारत, दर्शन, वेदान्तादि) राजनीति, विज्ञान, कलाकौशल, शिल्प, स्वास्थ्य, समाजशास्त्र, इतिहास, शिक्षाप्रद उपन्यास, नाटक, जीवनचरित्र, स्त्रियोपयोगी और बालोपयोगी आदि विषयों की पुस्तकें तथा स्वामी रामतीर्थ, विवेकानन्द, टालस्टाय, तुलसीदास, सूरदास, कबीर, बिहारी, भूषण आदि की रचनाएँ प्रकाशित होंगी।

इस मण्डल के सदुद्देश्य, महत्व और भविष्य का अन्दाज़ पाठकों को होने के लिए हम सिर्फ़ उसके संस्थापकों के नाम यहाँ दे देते हैं—

मंडल के संस्थापक—(१) सेठ जमनालालजी बजाज, वर्धा (२) सेठ घनश्यामदासजी बिड़ला कलकत्ता (सभापति) (३) स्वामी आनन्दानंदजी (४) बाबू महावीर प्रसादजी पोद्दार (५) डा० अम्बालालजी दधीच (६) पं० हरिभाऊ उपाध्याय (७) श्री जीतमल लूणिया, अजमेर (मन्त्री)

पुस्तकों का मूल्य—लगभग लागतमात्र रहेगा। अर्थात् बाजार में जिन पुस्तकों का मूल्य व्यापाराना ढंग से १) रखा जाता है उनका मूल्य हमारे यहाँ केवल ।=) या ।≋) रहेगा। इस तरह से हमारे यहाँ १) में ५०० से ६०० पृष्ठ तक की पुस्तकें तो अवश्य ही दी जावेंगी। सचित्र पुस्तकों में खर्च अधिक होने से मूल्य अधिक रहेगा। यह मूल्य स्थायी ग्राहकों के लिए है। सर्व साधारण के लिये थोड़ा सा मूल्य अधिक रहेगा।

हिन्दी-प्रेमियों का स्पष्ट कर्तव्य

यदि आप चाहते हैं कि हिंदी का-यह 'सस्ता मण्डल' फले-फूले तो आपका कर्तव्य है कि आजही न केवल आपही इसके ग्राहक बनें, बल्कि अपने परिचित मित्रों को भी बनाकर इसकी सहायता करें।

हमारे यहाँ से निकलनेवाली दो मालाएँ और
स्थायी ग्राहक होने के दो नियम
खूब ध्यान से सब नियमों को पढ़ लीजिये

(१) हमारे यहाँ से 'सस्ती विविध पुस्तक-माला' नामक माला निकलती है जिसमें वर्ष भर में ३२०० पृष्ठों की कोई अठारह बीस पुस्तकें निकलती हैं और वार्षिक मूल्य पोस्ट खर्च सहित केवल ८) है। अर्थात् छः रुपया ३२०० पृष्ठों का मूल्य और २) डाकखर्च। इस विविध पुस्तक-माला के दो विभाग हैं। एक 'सस्ती-साहित्य-माला' और दूसरी 'सस्ती-प्रकीर्ण पुस्तकमाला'। दो विभाग इसलिये कर दिये गये हैं कि जो सज्जन वर्ष भर में आठ रुपया खर्च न कर सकें, वे एक ही माला के ग्राहक बन जावें। प्रत्येक माला में कम से कम १६०० पृष्ठों की पुस्तकें निकलती हैं और पोस्ट खर्च सहित ४) वार्षिक मूल्य है। माला से ज्यों ज्यों पुस्तकें निकलती जावेंगी, वैसे वैसे पुस्तकें वार्षिक ग्राहकों के पास मण्डल अपना पोस्टेज लगाकर पहुँचाता जायगा। जब १६०० या ३२०० पृष्ठों की पुस्तकें ग्राहकों के पास पहुँच जावेंगी, तब उनका वार्षिक मूल्य समाप्त हो जायगा।

(२) वार्षिक ग्राहकों को उस वर्ष की–जिस वर्ष में वे ग्राहक बनें–सब पुस्तकें लेनी होती हैं। यदि उन्होंने उस वर्ष की कुछ पुस्तकें पहले से ले रखी हों तो अगले वर्ष की ग्राहक-श्रेणी का पूरा रुपया यानि ४) या ८) दे देने पर या कम से कम १) या २) जमा करा देने तथा अगला वर्ष शुरू होने पर शेष मूल्य भेज देने का वचन देने पर, पिछले वर्षों की पुस्तकें जो वे चाहें, एक एक कापी लागत मूल्य पर ले सकते हैं।

(३) दूसरा नियम—प्रत्येक माला की आठ आना प्रवेश फ़ीस या दोनों मालाओं की १) प्रवेश फीस देकर भी आप ग्राहक बन सकते हैं। इस तरह जैसे जैसे पुस्तकें निकलती जावेंगी, उनका लागत मूल्य और पोष्ट खर्च जोड़ कर वी. पी. से भेज दी जाया करेंगी। प्रत्येक वी.पी. में =) रजिस्ट्री खर्च व =) वी. पी. खर्च तथा पोस्टेज खर्च अलग लगता है। इस तरह वर्ष भर में प्रवेश फीसवाले ग्राहकों को प्रति माला पीछे क़रीब ढाई रुपया पोस्टेज पड़ जाता है। वार्षिक ग्राहकों को केवल १) ही पोस्ट खर्च लगता है।

हमारी सलाह है कि आप वार्षिक ग्राहक ही बनें

व
और!

(४) दोनों तरह के ग्राहकों को—एक एक कापी ही लागत मूल्य पर मिलती है। अधिक प्रतियाँ मँगाने पर सर्वसाधारण के मूल्य पर दो आना रुपया कमीशन काट कर भेजी जाती हैं। हाँ, बीस रुपये से ऊपर की पुस्तकें मँगाने पर २५) सैंकड़ा कमीशन काट कर भेजी जा सकती हैं। किसी एक माला के ग्राहक होने पर यदि वे दूसरी माला की पुस्तकें या मंडल से निकलने वाली फुटकर पुस्तकें मँगावेंगे तो दो आना रुपया कमीशन काट कर भेजी जावेंगी। पर अपना ग्राहक नंबर ज़रूर लिखना चाहिये।

(५) दोनों मालाओं का वर्ष—सस्ता साहित्य-माला का वर्ष जनवरी मास से शुरू होकर दिसम्बर मास में समाप्त होता है और प्रकीर्ण-माला का वर्ष अप्रेल मास से शुरू होकर दूसरे वर्ष के अप्रेल मास में समाप्त होता है। मालाओं की पुस्तकें दूसरे तीसरे महीने इकट्ठी निकलती हैं और तब ग्राहकों के पास भेज दी जाती हैं। इस तरह वर्ष भर में कुल १६०० या ३२०० पृष्ठों की पुस्तकें ग्राहकों के पास पहुँचा दी जाती हैं।

(६) जो वार्षिक ग्राहक माला की सब पुस्तकें सजिल्द मँगाना चाहें, उन्हें प्रत्येक माला के पीछे तीन रुपया अधिक भेजना चाहिये, अर्थात् साहित्य माला के ७) वार्षिक और इसी तरह प्रकीर्ण माला के ७) वार्षिक भेजना चाहिये।

हमारे यहाँ से निकलनेवाली फुटकर पुस्तकें

उपरोक्त दोनों मालाओं के अतिरिक्त अन्य पुस्तकें भी हमारे यहाँ से निकलती हैं। परन्तु जैसे दोनों मालाओं में वर्ष भर में १२०० पृष्ठों की पुस्तकें निकालने का निश्चित नियम है वैसा इनका कोई खास नियम नहीं है। सुविधा और आवश्यकतानुसार पुस्तकें निकलती हैं।

स्थाई ग्राहकों के जानने योग्य बातें

(१) जो ग्राहक जिस माला के ग्राहक बनते हैं, उन्हें उसी माला की एक एक पुस्तक लागत मूल्य पर मिल सकती है। अन्य पुस्तकें मँगाने के लिये उन्हें आर्डर भेजना चाहिये। जिन पर उपरोक्त नियमानुसार कमीशन काट कर वी॰ पी॰ द्वारा पुस्तकें भेज दी जावेंगी।

(२) ग्राहकों के पत्रो देते समय अपना ग्राहक नम्बर ज़रूर लिखना चाहिये। इसमें भूल न रहे।

(३) मंडल से निकलने वाली फुटकर पुस्तकों के भी यदि आप स्थाई ग्राहक बनना चाहें तो ।) प्रवेश फ़ीस भेज कर बन सकते हैं। जब जब पुस्तकें निकलेंगी उनको लागत मूल्य से वी० पी० करके भेज दी जावेंगी।

सस्ती-साहित्य-माला की पुस्तकें (प्रथम वर्ष)

दक्षिण अफ्रिका का सत्याग्रह—प्रथम भाग (ले०—महात्मा गांधी)

(१) पृष्ठ सं० २७२, मूल्य स्थायी ग्राहकों से ।ॐ) सर्वसाधारण से ।॥)

म० गांधीजी लिखते हैं—"बहुत समय से मैं सोच रहा था कि इस सत्याग्रह-संग्राम का इतिहास लिखूँ, क्योंकि इसका कितना ही अंश मैं ही लिख सकता हूँ। कौनसी बात किस हेतु से की गई है, यह तो युद्ध का सचालक ही जान सकता है। सत्याग्रह के सिद्धांत का सच्चा ज्ञान लोगों में हो, इसलिये यह पुस्तक लिखी गई है।" सरस्वती, कर्मवीर, प्रताप आदि पत्रों ने इस पुस्तक के दिव्य विचारों की प्रशंसा की है।

(२) शिवाजी की योग्यता—(ले० गोपाल दामोदर तामस्कर एम० ए०, एल० टी०) पृष्ठ-संख्या ११२, मूल्य स्थायी ग्राहकों से केवल।) सर्वसाधारण से ।=) प्रत्येक इतिहास प्रेमी को इसे पढ़ना चाहिए।

(३) दिव्य जीवन—अर्थात् उत्तम विचारों का जीवन पर प्रभाव संसार प्रसिद्ध स्विट् मार्सडन के The Miracles of Right Thoughts का हिंदी अनुवाद। पृष्ठ-संख्या १३६, मूल्य स्थायी ग्राहकों से ।) सर्व साधारण से ।=) चौथी बार छपी है।

(४) भारत के स्त्री-रत्न—(पाँच भाग) इस ग्रंथ में वैदिक काल से लगाकर आजतक की प्रायः सब धर्मों की आदर्श, पातिव्रत्य-परायण, विद्वान् और भक्त कोई ५०० स्त्रियों का जीवन-वृत्तान्त होगा। हिंदी में इतना बड़ा ग्रन्थ आज तक नहीं निकला। प्रथम भाग पृष्ठ ४१० मूल्य स्थायी ग्राहकों से केवल ॥।) सर्वसाधारण से १) आगे के भाग शीघ्र छपेंगे।

(५) व्यावहारिक सभ्यता—यह पुस्तक बालक, वायु, पुरुष, स्त्री

सभी को उपयोगी है, परस्पर बड़ों व छोटों के प्रति तथा संसार में किस प्रकार व्यवहार करना चाहिए, ऐसे ही अनेक उपयोगी उपदेश भरे हुए हैं। पृष्ठ १०८, मूल्य स्थायी ग्राहकों से ≡) सर्वसाधारण से ।)॥ दूसरी बार छपी है

(६) आत्मोपदेश—(यूनान के प्रसिद्ध तत्वज्ञानी महात्मा एपिक के विचार) पृष्ठ १०४, मूल्य स्थायी ग्राहकों से ≡) सर्वसाधारण से ।)

(७) क्या करें ?—(ले०—महात्मा टाल्सटाय) इसमें मनुष्य जाति के सामाजिक, आर्थिक और धार्मिक प्रश्नों पर बहुत ही सुंदर और मार्मिक विवेचन किया गया है। महात्मा गांधी जी लिखते हैं— "इस पुस्तक ने मेरे मन पर बड़ी गहरी छाप डाली है। विश्व-प्रेम मनुष्य को कहाँ तक ले जा सकता है, यह मैं अधिकाधिक समझने लगा" प्रथम भाग पृष्ठ २६६ मूल्य केवल ॥=) स्थाई ग्राहकों से ।≡) दूसरा भाग भी छप रहा है इसका मूल्य भी लगभग यही रहेगा।

(८) कलवार की करतूत—(ले०—महात्मा टाल्सटाय) इसी नाटक में शराब पीने के दुष्परिणाम बड़ी सुंदर रीति से दिखलाये गये हैं। पृष्ठ ४० मूल्य -)॥ स्थाई ग्राहकों से -)।

(९) जीवन-साहित्य—म० गांधी के सत्याग्रह आश्रम के प्रसिद्ध विचारक और लेखक काका कालेलकर के धार्मिक, सामाजिक और राजनैतिक विषयों पर मौलिक और मननीय लेख—प्रथम भाग पृष्ठ २१८ मूल्य ॥) स्थाई ग्राहकों से ।=) इसका दूसरा भाग भी छप रहा है।

इस प्रकार उपरोक्त नौ पुस्तकें १६८६ पृष्ठों की इस माला के प्रथम वर्ष में प्रकाशित हुई हैं अब दूसरे वर्ष अर्थात् सन् १९२७ में जो जो पुस्तकें प्रकाशित होंगी उनका नोटिस कवर के चौथे पृष्ठ पर छपा है।

सस्ती-प्रकीर्ण-माला की पुस्तकें (प्रथम वर्ष)

(१) कर्मयोग—(ले० अध्यात्म योगी श्री अश्विनीकुमार दत्त। इसमें निष्काम कर्म किस प्रकार किये जाते हैं—सच्चा कर्मवीर किसे कहते हैं—आदि बातें बड़ी खूबी से बताई गई हैं। पृष्ठ सं० १५२, मूल्य केवल ।=) स्थायी ग्राहकों से ।)

(२) सीताजी की अग्नि-परीक्षा—सीता जी की 'अग्नि-परीक्षा'

इतिहास से, विज्ञान से तथा अनेक विदेशी उदाहरणों द्वारा सिद्ध की गई है। पृष्ठ सं० १२४, मूल्य ।-) स्थायी ग्राहकों से ≡)॥

(३) कन्या-शिक्षा-सास, ससुर आदि कुटुंबी के साथ किस प्रकार का व्यवहार करना चाहिये, वर की व्यवस्था कैसी करनी चाहिये आदि बातें, कथा-रूप में बतलाई गई हैं। पृष्ठ सं० ९४, मूल्य केवल ।) स्थायी ग्राहकों से ≡)

(४) यथार्थ आदर्श जीवन—हमारा प्राचीन जीवन कैसा उच्च था, पर अब पाश्चात्य आडम्बरमय जीवन की नक़ल कर हमारी अवस्था कैसी शोचनीय हो गई है। अब हम फिर किस प्रकार उच्च बन सकते हैं-आदि बातें इस पुस्तक में बताई गई हैं। पृष्ठ सं० २६४, मूल्य केवल ॥-) स्थायी ग्राहकों से ।=)॥

(५) स्वाधीनता के सिद्धान्त—प्रसिद्ध आयरिश वीर टैरेंस मेक्स-वीनी की Principles of Freedom का अनुवाद—प्रत्येक स्वतंत्रता-प्रेमी को इसे पढ़ना चाहिये। पृष्ठ सं० २०८ मूल्य ॥), स्थायी ग्राहकों से ।-)॥

(६) तरंगित हृदय—(ले० पं० देवशर्मा विद्यालंकार) भू० ले० पद्म-सिंहजी शर्मा—इसमें अनेक ग्रन्थों को मनन करके एकांत हृदय के सामाजिक, आध्यात्मिक और राजनैतिक विषयों पर बड़े ही सुन्दर, हृदयस्पर्शी मौलिक विचार लिखे गये हैं। किसी का अनुवाद नहीं है। पृष्ठ सं० १७६, मूल्य ।≡) स्थायी ग्राहकों से ।-)

(७) गंगा गोविंदसिंह—(ले० बंगाल के प्रसिद्ध लेखक श्री चण्डीचरण सेन) इस उपन्यास में ईस्ट इंडिया कंपनी के शासन-काल में भारत के लोगों पर अँग्रेज़ों ने कैसे कैसे भीषण अत्याचार किये और यहाँ का व्यापार नष्ट किया उसका रोमांचकारी वर्णन तथा कुछ देश-भक्तों ने किस प्रकार मुसीबतें सहकर इनका मुक़ाबला किया उनका गौरव-पूर्ण इतिहास वर्णित है। रोचक इतना है कि शुरू करने पर समाप्त किये बिना नहीं रहा जा सकता। पृष्ठ २९६ मूल्य केवल ॥=) स्थायी ग्राहकों से ।≡)॥

(८) यूरोप का इतिहास—(प्रथम भाग) छप रहा है। पृष्ठ लगभग ३५० मार्च सन् १९२७ तक छप जायगा। इस माला में एकाध पुस्तक और निकलेगी तब वर्ष समाप्त हो जायगा।

हमारे यहाँ हिंदी की सब प्रकार की उत्तम पुस्तकें भी मिलती हैं—बड़ा सूचीपत्र मँगाकर देखिये!

पता—सस्ता-साहित्य-प्रकाशक मण्डल, अजमेर।

यह प्रार्थना उन्हीं से है जिन्हें अपनी मातृभाषा से प्रेम हो

हिन्दी भाषा की अपील

भारतवर्ष की राष्ट्र-भाषा हिन्दी के प्रचार के लिये एक ऐसी सार्वजनिक संस्था की परमावश्यकता थी जो शुद्ध सेवा भाव से बिना किसी प्रकार के लाभ की इच्छा रखते हुए हिन्दी में उत्तमोत्तम पुस्तकें बहुत ही स्वल्प मूल्य में निकाले। इसी उद्देश्य को पूरा करने के लिये यह सस्ता मंडल स्थापित हुआ है। **अभी तक जो पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं वे कितनी उत्तम और साथ ही कितनी सस्ती हैं यह साथवाले नोटिस से आपको मालूम हो जायगा।**

मंडल का आदर्श

अभी हमने १) में ५०० से ६०० पृष्ठों तक की पुस्तकें स्थाई ग्राहकों को देना निश्चय किया है। पर हमारा आदर्श है कि १) में ८००) से १००० पृष्ठों तक की पुस्तकें हम निकाल सकें। यदि यह दिन आगया जो कि अवश्य आवेगा तो हिन्दी भाषा की बड़ी सेवा हो सकेगी।

मण्डल के लाभ और हानि का सवाल

मण्डल सिर्फ इतना ही चाहता है कि उसके काम करनेवाले कार्य्यकर्त्ताओं का वेतन निकल आवे और वह इस तरह स्वावलम्बी होकर चिरकाल तक हिन्दी की सेवा कर सके, बस यही उसका स्वार्थ है। अभी जो १) में ५०० से ६०० पृष्ठों तक की पुस्तकें देने का निश्चय किया है उसमें जबतक **चार हजार ग्राहक न बन जावें तबतक मण्डल को बराबर हानि होती रहेगी।** इतने ग्राहक हो जाने पर १) में उपरोक्त पृष्ठों की पुस्तकें देने से मण्डल को हानि न उठानी पड़ेगी। **ज्योंही चार हजार से ऊपर ग्राहक बढ़ने लगे वैसे ही पृष्ठ संख्या भी बढ़ने लगेगी।**

मण्डल के जीवन का आधार

उसके स्थाई ग्राहक हैं—गुजरात जैसे छोटे से प्रांत में वहां के सस्तुं-साहित्य कार्य्यालय के सात हजार स्थाई ग्राहक हैं। इसीलिये आज उस संस्था से "कई

उत्तम ग्रन्थ स्वल्प

हजार ग्राहक हो

आपसे विनीत प्रार्थना

जब कि हम स्थाई ग्राहकों को लागत मूल्य में पुस्तकें दे रहे हैं ऐसी अवस्था में क्या हम यह आशा नहीं कर सकते कि आप इसके स्थाई ग्राहक बनकर देश सेवा के कार्य्य में हमारा हाथ बटावेंगे। आपको तो यह लाभ होगा कि कुछ वर्षों में ही आपके घर में उत्तम चुनी हुई सब विषयों की पुस्तकों का बहुत ही कम कीमत में पुस्तकालय हो जायगा और हमें आपके ग्राहक बनने से बड़ी मदद मिलेगी। **दोनों मालाओं का पोस्टेज सहित कुल ८) वार्षिक है जिसमें कि ३२०० पृष्ठों की कोई अठारह बीस पुस्तकें घर बैठे आपको मिल जावेंगी।** आशा है आप हमारी इस उचित प्रार्थना को योंही नहीं टाल देंगे।

अन्तिम निवेदन

(१) यदि किसी कारण से आप ग्राहक न बन सकें तो कम से कम एक दो ग्राहक बनाकर ही आप हमारी सहायता कर सकते है। आपके मित्रों या सम्बन्धियों आदि में एक दो को तो आग्रह करके आप जरूर ही ग्राहक बना सकेंगे। यह तो निश्चय बात है। सिर्फ आपके हृदय में हिन्दी के लिये सच्चा प्रेम होना चाहिये।

लोगों की उदासीन वृत्ति

जब हम, लोगों के पास अपने विज्ञापन भेजते हैं तो बहुत कम लोग उन पर ध्यान देकर ग्राहक बनते हैं पर जब हम उनके घर पर सामने चले जाते हैं तो वे जरूर ग्राहक बन जाते हैं यह हमारा खुद का अनुभव है। इसका कारण केवल उनका आलस्य या उदासीन वृत्ति है। घर घर जाने में कितना रुपया और कितनी शक्ति खर्च होती है यह आप अनुमान कर सकते हैं। आप यदि इस ओर ध्यान दें और सहायता के भाव से प्रेरित हों तो मण्डल की यह शक्ति और द्रव्य बच कर हिन्दी की अधिक सेवा में लग सकता है।

आशा है आप हमारी अपील को व्यर्थ न फेंक देंगे और ऐसा समझ कर कि हम आपके सामने ही अपील कर रहे हैं, कम से कम एक वर्ष के लिये जरूर ग्राहक बनेंगे।

विनीत—जीतमल लूणिया, मन्त्री,

सस्ता-साहित्य-प्रकाशक मंडल, अजमेर।